॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नम: ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

# ॥ ऋग्वेद संहिता ॥

# ॥ ऋग्वेद ॥

# ॥ अथ पंचम मण्डलं ॥

**श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन**

**॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥**

# विषय सूची


सूक्त १ .......... 8

सूक्त २ .......... 13

सूक्त ३ .......... 18

सूक्त ४ .......... 23

सूक्त ५ .......... 28

सूक्त ६ .......... 32

सूक्त ७ .......... 36

सूक्त ८ .......... 40

सूक्त ९ .......... 44

सूक्त १० .......... 47

सूक्त ११ .......... 50

सूक्त १२ .......... 53

सूक्त १३ .......... 56

सूक्त १४ .......... 59

सूक्त १५ .......... 62

सूक्त १६ .......... 65

सूक्त १७ .......... 68

सूक्त १८ .......... 71

सूक्त १९ .......... 74

सूक्त २०........................................................................ 77
सूक्त २१........................................................................ 79
सूक्त २२........................................................................ 81
सूक्त २३........................................................................ 83
सूक्त २४ ........................................................................ 85
सूक्त २५ ........................................................................ 87
सूक्त २६ ........................................................................ 91
सूक्त २७ ........................................................................ 95
सूक्त २८ ........................................................................ 98
सूक्त २९ ........................................................................ 101
सूक्त ३०........................................................................ 107
सूक्त ३१........................................................................ 113
सूक्त ३२........................................................................ 118
सूक्त ३३........................................................................ 123
सूक्त ३४ ........................................................................ 128
सूक्त ३५ ........................................................................ 132
सूक्त ३६ ........................................................................ 135
सूक्त ३७ ........................................................................ 138
सूक्त ३८........................................................................ 141
सूक्त ३९........................................................................ 143

सूक्त ४०........................................................................ 145

सूक्त ४१........................................................................ 149

सूक्त ४२ ........................................................................ 157

सूक्त ४३ ........................................................................ 164

सूक्त ४४ ........................................................................ 171

सूक्त ४५ ........................................................................ 178

सूक्त ४६ ........................................................................ 183

सूक्त ४७ ........................................................................ 187

सूक्त ४८ ........................................................................ 190

सूक्त ४९ ........................................................................ 193

सूक्त ५० ........................................................................ 196

सूक्त ५१........................................................................ 198

सूक्त ५२ ........................................................................ 204

सूक्त ५३ ........................................................................ 211

सूक्त ५४ ........................................................................ 217

सूक्त ५५ ........................................................................ 223

सूक्त ५६ ........................................................................ 228

सूक्त ५७ ........................................................................ 232

सूक्त ५८ ........................................................................ 236

सूक्त ५९ ........................................................................ 240

सूक्त ६० .................................................. 244
सूक्त ६१.................................................. 248
सूक्त ६२ .................................................. 255
सूक्त ६३ .................................................. 259
सूक्त ६४ .................................................. 263
सूक्त ६५.................................................. 266
सूक्त ६६.................................................. 269
सूक्त ६७.................................................. 272
सूक्त ६८ .................................................. 274
सूक्त ६९ .................................................. 276
सूक्त ७० .................................................. 278
सूक्त ७१ .................................................. 280
सूक्त ७२ .................................................. 282
सूक्त ७३ .................................................. 284
सूक्त ७४ .................................................. 288
सूक्त ७५.................................................. 292
सूक्त ७६.................................................. 296
सूक्त ७७.................................................. 299
सूक्त ७८ .................................................. 302
सूक्त ७९ .................................................. 306

सूक्त ८०................................................................................ 310
सूक्त ८१................................................................................ 313
सूक्त ८२ .............................................................................. 316
सूक्त ८३................................................................................ 319
सूक्त ८४ .............................................................................. 323
सूक्त ८५ .............................................................................. 325
सूक्त ८६ .............................................................................. 329
सूक्त ८७ .............................................................................. 332

# सूक्त १

ऋषि – बुधगविष्टिगवात्रेयौ
देवता – अग्नि। छंद – त्रिष्टुप,

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥

उषाकाल में जाग्रत् गौओं की तरह याजकों की समिधाओं (श्रद्धा ) से जाग्रत्-प्रज्वलित इस (दिव्य) अग्नि की ज्वालाएँ, फैली हुई वृक्ष की डालियों के समान (अपनी किरणों से) द्युलोक तक फैल जाती हैं ॥१॥

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

यज्ञ के आधार अग्निदेव, यजन कार्य के निमित्त देवों द्वारा प्रदीप्त होते हैं। वे अग्निदेव प्रातःकाल श्रेष्ठ मानसिकता से ऊर्ध्वगामी होते हैं। उस

समय इनका तेजस्वी रूप प्रत्य हो उठता है । ये महान् देव, जगत् को तम से मुक्त कर देते हैं ॥२॥

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

जब ये अग्निदेव बाधा डालने वाले अन्धकार को हर लेते हैं, तो शुभ किरणों से तेजस्वी बने अग्निदेव जगत् को प्रकाशित कर देते हैं। इन्हें बल देने के लिए जब घृतधारा यज्ञ पात्र में प्रवाहित होती है, तो अग्निदेव ऊँचे उठकर जिह्वाओं (ज्वालाओं) से घृतधारा का पान करते हैं ॥३॥

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥

लोगों की आँखें जैसे सूर्योदय की प्रतीक्षा में निरत रहती हैं, वैसे ही दे-याजकों के मन अग्नि की कामना से सब ओर घूमते हैं। आकाश और पृथिवी, विचित्र रूप वाली उषा के साथ जिन अग्निदेव को प्रकट करते हैं; वे अग्निदेव उज्ज्वल कान्तियुक्त और बलयुक्त हैं ॥४॥

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५॥

उत्पादित होने योग्य ये अग्निदेव उषाकाल में उत्पन्न होते हैं। वनों के काष्ठों में हितकारी अग्निदेव प्रदीप्त होते हैं। ये प्रत्येक घर में सात रत्न रूपी दीप्तियाँ धारण कर यज्ञ के योग्य होता' रूप में अधिष्ठित होते हैं ॥५॥

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥

यज्ञ के योग्य होता' रूप में प्रतिष्ठित ये अग्निदेव, माता (पृथ्वी) की गोद में सुरभित वेदी पर विराजित होते हैं । ये तरुण, विद्वान्, अति निष्ठावान्, सत्यस्वरूप और धारण करने योग्य अग्निदेव, मनुष्यों के मध्य प्रदीप्त होते हैं ॥६॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से द्यावा-पृथिवीं को परिपूर्ण करते हैं। यजमान उन ज्ञानी, यज्ञ कार्य सिद्ध करने वाले, 'होता' रूप अग्निदेव का स्तोत्रों से स्तवन करते हैं । यजमान अन्न के स्वामी अग्निदेव का घृत-आहुतियों द्वारा नित्य यजन करते हैं ॥७॥

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

सबको पवित्र करने वाले, विकारों का शमन करने वाले, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अतिथि सदृश पूजनीय, हम सबका कल्याण करने वाले ओजस्वी ये अग्निदेव अपने स्थान पर पूजे जाते हैं । हे अग्ने ! आप अपनी सामर्थ्य से सबको पूर्ण करते हैं ॥८॥

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥

हे अग्ने ! आप यज्ञ में उत्पन्न सुन्दर रूप में प्रकट होते हैं। आप शीघ्र ही अन्यों को पार कर आगे बढ़ते हैं। आप मनुष्यों में अत्यन्त स्तुत्य, सुन्दर रूपवान्, प्रकाशवान् और प्रिय हैं। आप प्रजाओं में अतिथि रूप हैं ॥९॥

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥

हे युवा (सामर्थ्यवान्) अग्ने ! आपके उपासक लोग दूर से अथवा पास से आपके लिए भोज्य पदार्थ अर्पित करते हैं। आप शुद्ध

उच्चारणयुक्त स्तुति करने वाले की श्रेष्ठ बुद्धि को जानें । हे अग्निदेव ! आपको महान् आश्रय अति कल्याणकारी है ॥१०॥

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप तेजस्वी और सुन्दर रथ पर पूज्य देवों के साथ बैठकर आयें । सबै देवों को जानने वाले आप उन्हें हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए व्यापक अन्तरिक्ष के सुगम मार्गों से यहाँ इस यज्ञ में लायें ॥११॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥

त्रिकालदशी, शक्तिशाली तथा सेचन (प्राण तत्त्व प्रदान करने में समर्थ यज्ञाग्नि का स्तोत्र पाठ से हम स्तवन करते हैं । वाणी में स्थिर, हविदाता, आवाहित अग्नि में मंत्रोच्चारणपूर्वक हविष्यान्न उसी प्रकार समर्पित करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक में प्रकाशमान आदित्य को संध्योपासना के समय कहीं गई विशिष्ट महिमायुक्त प्रार्थनाएँ समर्पित की जाती हैं ॥१२॥

# सूक्त २

ऋषि – कुमार आत्रेय, वृशो, ऊभौ, २, ९ वृशो जान
देवता – अग्नि। छंद – त्रिष्टुप, १२ शक्करी

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥

तरुणी माता (काष्ठ अरणियाँ) अपने पुत्र (अग्नि) को गर्भ में भली प्रकार गुप्त रखती हैं। इसका पोषण स्वयं करती हैं, पिता को नहीं देती हैं। प्रकट होने पर इस गुप्त शिशु को लोग साक्षात् देखते हैं, तब इसके तेज को लोग विनष्ट नहीं कर सकते ॥१॥

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२॥

हे महान् तरुणी ! आप बालक (अग्नि) को गर्भ में धारण करती हैं, उत्पन्न करती हैं और उसका भली प्रकार पोषण करती हैं। गर्भ में

यह बालक पूर्व के अनेक वर्षों तक पुष्ट होता है। जब आपने इसे उत्पन्न किया, तब इस उत्पन्न बालक को सबने देखा ॥२॥

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३॥

हमने निकटस्थ स्थान से स्वर्ण सदृश ज्वाला वाले, उज्ज्वल वर्ण वाले, आयुध रूप दीप्तियों वाले अग्निदेव को देखा। हमने उन्हें अमृतमय स्तोत्रं निवेदित किया। वे इन्द्रदेव को न मानने वाले और स्तुति न करने वाले भला हमारा क्या करेंगे? ॥३॥

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥

पशुओं के झुण्ड के समान, अपने स्थान (अरणि) में गुप्त अग्नि को विचरते हुए हमने देखा है। अग्निदेव जब उत्पन्न होते हैं, तो उनकी दीप्त ज्वालाओं का स्पर्श नहीं कर सकते । युवतियों के वृद्धा होने के समान क्षीण होती ज्वालाएँ हविष्यान्न प्राप्त कर जरावस्था से पुनः युवतियों के समान पुष्ट होती जाती हैं ॥४॥

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५॥

जो कोई राष्ट्र के स्वामी और भूमिपति नहीं हैं, वे कौन हैं, जो मुझे भूमि से पृथक् कर सकते हैं? जो इस भूमि पर अतिक्रमण करते हैं, उनसे हमें मुक्त करें । वे ज्ञानवान् अग्निदेव हमारे पशुओं के समीप रक्षक रूप में उपस्थित हों ॥५॥

वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥

ये अग्निदेव सब प्राणियों के स्वामी और सबको आश्रय देने वाले हैं। शत्रुओं ने इन अग्निदेव को मर्त्यलोक में छिपा कर रखा । अत्रि वंशजों ने मंत्र युक्त स्तोत्रों से उन्हें मुक्त किया। उन अग्निदेव की निन्दा करने वाले निन्दा के पात्र हों ॥६॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

हे अग्निदेव ! शुन: शेष ऋषि के स्तुति करने पर आपने उन्हें सहस्रों यूप (स्तम्भों) के बंधन से मुक्त किया। है मेधावी अग्निदेव ! आप होता' रूप में इस यज्ञ में अधिष्ठित हों और हमें भी बंधनों से मुक्त करें ॥७॥

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप जब क्रुद्ध होते हैं, तब हमसे दूर हो जाते हैं। नियमों के पालक इन्द्रदेव ने यह उपदेश हमें किया था। विद्वान् इन्द्रदेव ने आपको देखा है और उनके द्वारा प्रेरित होकर हम आपके सम्मुख उपस्थित हैं ॥८॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९॥

वे अग्निदेव अपने महान् तेजों से प्रकाशित होते हैं । वे अपनी महत्ता से सब पदार्थों को प्रकट करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से असुरों की दुःखप्रद माया को विनष्ट करते हैं। राक्षसों के विनाश के निमित्त अपनी ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हैं ॥९॥

उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१०॥

अग्नि की शब्द करने वाली ज्वालाएँ तीक्ष्ण आयुधों के समान राक्षसों का विनाश करने के लिए द्युलोक में प्रकट होती हैं । (हव्यादि से) पुष्ट होकर ज्वालाएँ अति विकराल रूप धारण कर राक्षसां को मंतप्त

करती हैं। आसुरी बाधाएँ अग्निदेव की सीमा को प्रतिबन्धित नहीं कर सकतीं ॥१०॥

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥

अनेक रूपों में उत्पन्न हे अग्निदेव ! आप धैर्यवान्, ज्ञानी और उत्तम कार्य करने वाले हैं। रथ के निर्माण के सदृश मनोयोगपूर्वक हमने आपके निमित्त स्तोत्रों को तैयार किया है । हे अग्निदेव ! आप इन स्तोत्रों से हर्षित होकर विजय प्राप्त करने वाले स्वर्गिक सुख से युक्त हों ॥११॥

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥

असंख्यों ज्वालाओं वाले, अभीष्ट वर्षक, अबाध वृद्धि-युक्त, शत्रुरहित अग्निदेव श्रेष्ठ पुरुषों को धन देते हैं। अतएव अमर देवगण इन अग्निदेव से कहते हैं-'आप कुशा के आसन बिछाने वाले तथा हवि देने वाले याजक को निश्चय ही सुख प्रदान करें ॥१२॥

## सूक्त ३

ऋषि – वसुश्रुत आत्रेय:
देवता – अग्नि, ३ मरूदरुद्रविष्णव:। छंद – त्रिष्टुप, १२ विराट

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥

हे अग्निदेव ! जब आप प्रकट होते हैं, तो वरुण के सदृश गुण वाले होते हैं और जब आप प्रदीप्त होते हैं, तो मित्र के सदृश होते हैं। आप में ही सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं। हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप हविदाता यजमान के लिए इन्द्रदेव के सदृश पूज्य हैं ॥१॥

त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२॥

हे स्वधावान् अग्निदेव ! गुप्त नाम से आप कन्याओं के अर्यमा (नियंत्रक) रहते हैं ।जब आप पति-पत्नी द्वारा गो (गौओं अथवा

इन्द्रियों) के रस से सिञ्चित किये जाते हैं, तब आप उन्हें समान मन वाले बनाकर सुख देते हैं ॥२॥

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

हे अग्निदेव ! आपकी शोभा बढ़ाने के लिए मरुद्गण शोधन प्रक्रिया चलाते हैं । हे रुद्ररूप ! आपका जन्म सुन्दर और विलक्षण है । विष्णुदेव आपके निमित्त उपमा योग्य पद निर्धारित करते हैं। आप देवों के इन गुह्य अनुग्रहों को संरक्षित करें ॥३॥

तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥४॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपकी समृद्धि से ही सभी देवगण सुन्दर रूप और अत्यन्त तेज को धारण करते हुए अमृत तत्त्व की प्राप्ति करते हैं । कामना करने वाले मनुष्य स्तुतियों के साथ घृत की हवियाँ देते हुए होता रूप अग्निदेव की सेवा करते हैं ॥४॥

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५॥

हे अग्निदेव ! आपसे पूर्व अन्य कोई होता नहीं था। यज्ञ करने वाला भी अन्य कोई नहीं था। हे अन्न अभिपूरित अग्निदेव ! भविष्य में भी आपके सदृश अन्य कोई काव्य स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य नहीं होगा। आप जिसके यहाँ अतिथि रूप होते हैं, वह यजमान यज्ञ के द्वारा पुत्र-पौत्रादि प्रजाओं को प्राप्त करता है ॥५॥

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६॥

हे अग्निदेव ! धन की कामना करने वाले हम आपको प्रज्वलित कर हवियों से प्रदीप्त करते हैं। आपके अनुग्रह से हम धनों से युक्त होकर आपसे संरक्षित हों । हम सभी छोटे-बड़े युद्धों में नित्य विजय हस्तगत करें । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! हम धनों से और सन्तानों से युक्त होकर सुखी हों ॥६॥

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७॥

हे अग्निदेव ! जो मनुष्य हमारे प्रति अपराध या पापपूर्ण व्यवहार करता है, उस पाप को आप उस पापी में ही विस्थापित कर दें । हे ज्ञानी अग्निदेव ! जो हमें पाप या अपराध से प्रताड़ित करता है, आप उस पापी को मार डालें ॥७॥

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥८॥

हे अग्ने !रात्रि की समाप्ति अर्थात् उषा की प्राकट्य वेला में पुरातन लोग आपको देवों का दूत बनाकर हवियों से यजन करते हैं ।उन श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित होकर आप धनों औरयोग्य धामों से संपन्न करते हैं ॥८॥

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥९॥

हे बल के द्वारा उत्पन्न अग्निदेव ! पुत्र द्वारा पिता की सेवा करने के समान जो विद्वान् आपकी सेवा करता है, उसे आप संकटों से पार करें और पापों से मुक्त करें । हे ज्ञानी और यज्ञपालक अग्निदेव ! आप हम पर अपनी कृपा दृष्टि कब करेंगे? और हमें कब श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरित करेंगे? ॥९॥

भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१०॥

हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप पिता रूप में सबके पालनकर्ता हैं । स्तुतियों के साथ वि देने वाले यजमान की वियों से संतुष्ट होकर आप उन्हें बहुत यश प्रदान करते हैं । वृद्धि को प्राप्त होते हुए, तेजयुक्त शोभा और अतीव बलों से संयुक्त ये अग्निदेव उपासक को अत्यन्त सुख देते हैं ॥१०॥

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११॥

हे प्रिय युवा अग्निदेव ! जो आपको चोर दिखाई देते हैं तथा जो कुटिल शत्रु अनजान मनुष्यों को प्रताड़ित करते हैं, ऐसे सम्पूर्ण आगत संकटों से आप हम स्तोताओं को पार लगायें ॥११॥

इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२॥

हे अग्निदेव ! स्तुति करने वाले हम उपासक अब आपकी ओर अभिमुख हुए हैं। हमें अपने अपराधों को आपके सम्मुख निवेदन कर आपके आश्रय की कामना करते हैं । हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध ये अग्निदेव हमें निन्दकों की ओर और हिंसकों की ओर जाने से बचायें ॥१२॥

# सूक्त ४

ऋषि – वसुश्रुत आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद – त्रिष्टुप

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप धनों के अधीश्वर हैं। हम यज्ञों में आपकी स्तुति करते हैं । बल प्राप्ति की कामना वाले हम आपके द्वारा बलों को प्राप्त करें । शत्रु सेनाओं को मार भगाकर हम विजय प्राप्त करें ॥१॥

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥२॥

हव्यादि का हवन करने वाले अग्निदेव सदैव अजर रूप में स्थित हैं। वे पिता रूप में हमारे पालनकर्ता हैं। सर्वव्यापक रूप में सर्वत्र प्रकाशित होते हुए अति दर्शनीय होते हैं । हे उत्तम गार्हपत्य अग्निदेव

! हमारे निमित्त उत्तम अन्न प्रदान करें। हमारी ओर कीर्ति भी प्रेरित करें ॥२॥

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥३॥

हे अत्विजो ! आप मनुष्यों के अधीश्वर, ज्ञानी, स्वयं पवित्र रहकर मनुष्यों को पवित्र करने वाले, दीप्तिमान् शरीर वाले, सर्वभूत-ज्ञाता इन अग्निदेव को यज्ञ में होता रूप में धारण करें । वे देवों द्वारा धारण करने योग्य धन हमें प्रदान करें ॥३॥

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४॥

हे अग्निदेव ! वेदी में प्रतिष्ठित होकर प्रज्वलित हुए आप, सूर्यरश्मियों के साथ हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें । हे सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव ! आप हमारी समिधाओं को ग्रहण करते हुए देवों को यहाँ हवि भक्षण के निमित्त ले आयें ॥४॥

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५॥

घर में आये प्रिय और विनयशील अतिथि के समान पूज्य आप हमारे इस यज्ञ में आयें। सभी आक्रामक शत्रुओं का हनन कर शत्रुवत् व्यवहार करने वालों का धन हमारे पास ले आयें ॥५॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६॥

हे अग्निदेव ! अपने शरीर के लिए अन्न ग्रहण करते हुए आप हमारे शत्रुओं का आयुधों से नाश करें । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप देवों को तृप्त करते हैं। हे मनुष्यों में अग्रणी स्तुत्य अग्निदेव ! संग्राम में आप हमारी रक्षा करें ॥६॥

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी श्रेष्ठ वचनों और हवियों से सेवा करते हैं। हे पवित्रकर्ता, कल्याणकारी तेज संयुक्त अग्निदेव ! आप हमें सबके द्वारा वरणीय श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें । हमें सब प्रकार के धनों को धारण करायें ॥७॥

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥८॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! जल, थल और पर्वत इन तीन सदनों में निवास करने वाले आप हमारे यज्ञ में प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न का सेवन करें । हम देवों के निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले हों । आप तीनों (कायिक वाचिक, मानसिक) पापों से हमारी रक्षा करें । उत्तम आश्रय स्थान देकर हमें सुख करें ॥८॥

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥९॥

हे सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव ! जैसे नाविक नाव द्वारा लोगों को नदी के पार करता है, वैसे ही आप आगत सम्पूर्ण संकटों से हमें पार करें । अत्रि के समान अभिवादन योग्य स्तुतियाँ हम आपको निवेदित करते हैं; आप हमारे इस निवेदन को जानें, हमारे शरीरों की आप ही रक्षा करें ॥९॥

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप अविनाशी हैं और हम मरणधर्मा हैं। हम स्तुतिपूर्ण हृदय से आपको नमस्कार करते हुए बुलाते हैं । हे ऐश्वर्यों के स्वामी

अग्निदेव ! हमें यश प्रदान करें । हम आपके अविनाशी रूप में स्थित होकर सन्तानों से युक्त हों ॥१०॥

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११॥

हे ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ कर्म करने वाले जिस यजमान पर अनुग्रह करते हैं; वह यजमान अश्वों, पुत्रों, वीरों और गौओं से युक्त कल्याणकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥११॥

# सूक्त ५

ऋषि – वसुश्रुत आत्रेय:
देवता – आप्रीसूक्तं। छंद – गायत्री

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे ॥१॥

(हे यजमान !} श्रेष्ठ, भली-भाँति प्रज्वलित, जाज्वल्यमान, सर्वज्ञ (जातवेदा), देदीप्यमान यज्ञाग्नि में शुद्ध पिघले हुए घृत की आहुतियाँ प्रदान करें ॥१॥

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः ।
कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२॥

मनुष्यों द्वारा अति प्रशंसित ये अग्निदेव इस यज्ञ को भली प्रकार सम्पन्न करें। वे अग्निदेव अडिग, ज्ञान-सम्पन्न और मधुर रश्मियुक्त हैं ॥२॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
सुखै रथेभिरूतये ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप सबके द्वारा स्तुत्य हैं । आप हमारी रक्षा के निमित्त प्रिय और विलक्षण शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव को यहाँ सुखकारी रथों से ले आयें ॥३॥

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत ।
भवा नः शुभ्र सातये ॥४॥

हे मनुष्यो ! आप ऊन के समान मृदु एवं सुखप्रद आसनों को बिछायें, क्योंकि स्तोताओं ने स्तुतियाँ आरम्भ कर दी हैं। हे शुभ्र अग्निदेव ! स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हुए आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥४॥

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये ।
प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥५॥

हे हवियों ! आप उत्तम गुणों वाली, दिव्य द्वारों को खोलने वाली और श्रेष्ठ कर्म वाली हैं। आप हमारी रक्षा के निमित्त यज्ञ को परिपूर्ण करें ॥५॥

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा ।
दोषामुषासमीमहे ॥६॥

सुन्दर रूप वाली, आयु बढ़ाने वाली, महान् कर्मों को सम्पन्न कराने वाली, यज्ञ कर्मों की निर्मात्री रात्रि और उषा देवियों की हम उत्तम स्तुति करते हैं ॥६॥

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः ।
इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७॥

हे अग्नि और आदित्य रूप दिव्य होताओ ! आप दोनों हम मनुष्यों के इस यज्ञ में स्तुति से प्रेरित होकर वायु की गति से आयें ॥७॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८॥

इला, सरस्वती और मही (महान् भारती) तीनों देवियाँ सुखकारक हैं । ये मार्ग में अबाधित होकर हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों ॥८॥

शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना ।
यज्ञेयज्ञे न उदव ॥९॥

हे त्वष्टादेव ! आप व्यापक सामर्थ्य सम्पन्न और कल्याणकारी कर्म करने वाले हैं। आप हमारे यज्ञ में आगमन करें । हमारे प्रत्येक यज्ञ कर्म के उत्तम पद में प्रतिष्ठित होकर हमारे रक्षक हों ॥९॥

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि ।
तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥

हे वनस्पते ! जहाँ-जहाँ आप देवों के गुप्त स्थानों को जानते हैं, वहाँ-वहाँ इन हव्यादि साधनों को पहुँचायें ॥१०॥

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः ।
स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११॥

यह हवि अग्नि और वरुण देवों के लिए समर्पित हैं । यह हवि इन्द्रदेव और मरुद्गणों के लिए समर्पित है ॥११॥

# सूक्त ६

ऋषि – वसुश्रुत आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद – पंक्ति

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

सबके आश्रय स्थल उन अग्निदेव से हम परिचित हैं, जिन अग्निदेव को प्रदीप्त जानकर गौएँ गोधूलि वेला में अपने-अपने बाड़े में वापिस लौटती हैं तथा तीव्रगामी अश्व नित्य ही उन अग्निदेव को प्रदीप्त देखकर अश्वशाला में लौटते हैं । हे अग्निदेव ! ऐसे आप याजकों के लिए प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥१॥

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

जो सबके आश्रयरूप एवं सहायक हैं, उन्हीं अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं। जिनके समीप गौएँ आती हैं और शीघ्र गतिमान् अश्व भी

जिनके समीप आते हैं, ऐसे अग्निदेव की श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर सुसंस्कार सम्पन्न विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं। इन गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! याजकों के लिए आप प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥२॥

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

ये अग्निदेव निश्चय ही यजमान को अन्न देने वाले, पूज्य और सब पर दृष्टि रखने वाले हैं। वे प्रसन्न होकर यज्ञ में सबको ऐश्वर्य प्रदान करने में किञ्चित् मात्र संकोच नहीं करते । हे अग्निदेव !आप स्तोताओं को पर्याप्त पोषण दें ॥३॥

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

हे अग्निदेव ! प्रकाशयुक्त एवं जरारहित (नित्य युवा) आपको हम प्रज्वलित करते हैं। आपकी श्रेष्ठ ज्योति द्युलोक में प्रकाशित होती हैं । आप स्तोताओं को अन्न (पोषण) से परिपूर्ण कर दें ॥४॥

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥५॥

विश्व का पोषण करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, आनन्दवर्द्धक, स्वप्रकाशित हे अग्निदेव ! ऋचाओं का उच्चारण करते हुए, याजकगण आपकी ज्वालाओं में आहुति दे रहे हैं; उन स्तोताओं को आप ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५॥

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥

ये अग्निदेव अन्य सब अग्नियों में वरण करने योग्य, सब धनों को पुष्ट करते हैं । वे आनन्द प्रदायक अग्निदेव सबको श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करते हैं। वे हविष्यान्न की कामना करते हैं, ऐसे हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से समृद्ध करें ॥६॥

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

हे अग्निदेव ! आपकी किरणें आहुतियों से युक्त होकर वृद्धि पाती हैं। आपकी तेजस्वी किरणे शब्दवान् होकर हवि की कामना करती हैं । हे अग्निदेव ! स्तोताओं को अन्नादि से पूर्ण करें ॥७॥

नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं को नवीन अन्नों से युक्त उत्तम आवास प्रदान करें, जिससे हम घर-घर में आपकी पूजा करें और आपको दूत रूप में पाकर सुखी हों । हे अग्निदेव ! स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से अभिपूरित करें ॥८॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

प्रजा का पालन करने वाले, शक्ति-सम्पन्न, देदीप्यमान हे अग्निदेव ! आहुति प्रदान करते समय दोनों पात्र आपके मुख तक पहुँचते हैं । हविष्यान्न द्वारा आपको प्रसन्न करने वाले स्तोताओं को महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९॥

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥

हम लोग यज्ञों में उत्तम वाणियों के द्वारा अग्निदेव का पूजन करते हैं। वे अग्निदेव हमें उत्तम, वीर पुत्र-पौत्रादि और बलशाली अप्वों को प्रदान करें । स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से समृद्ध करें ॥१०॥

# सूक्त ७

ऋषि – इष आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद – अनुष्टुप, १० पंक्ति

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

हे मित्र ऋत्विजो ! जल के पौत्र रूप ये वरिष्ठ अग्निदेव, श्रेष्ठ बलों को प्रदान करने वाले हैं। आप इनके निमित्त श्रेष्ठ स्तवनों का गान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें ॥१॥

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥२॥

जिनके प्रकट होने पर मनुष्य प्रसन्न होते हैं, जिनकी स्तुतियाँ कर ऋत्विग्गण यज्ञ स्थान में उन्हें प्रज्वलित करते हैं। सभी प्राणी भी जिनका दर्शन करने के लिए प्रकट हो जाते हैं, वे अग्निदेव कहाँ हैं ? ॥२॥

सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥

जब हम अन्न प्राप्ति की कामना करते हैं और हम मनुष्यों के द्वारा अग्निदेव को हवियाँ दी जाती हैं, तब वे (अग्निदेव) अपनी सामर्थ्य से देदीप्यमान होकर ऊत (सत्य) रूप रश्मियों को धारण करते हैं ॥३॥

स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥

ये जरारहित और पवित्र करने वाले अग्निदेव जब वनस्पतियों को जलाने लगते हैं, तब वे रात्रि में भी गहन तमिस्रा को दूर करते हुए अपनी ज्वालाओं को फैलाते हैं ॥४॥

अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥

यज्ञ-मार्गों के पथिक ऋत्विग्गण, अग्नि की परिचर्या करते हुए घृत की आहुतियाँ देते हैं। तब वे घृत धारायें ज्वालाओं में उसी प्रकार आरूढ़ होती हैं, जैसे पुत्र पिता की पीठ पर आरूढ़ होते हैं ॥५॥

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥

अग्निदेव अनेकों द्वारा चाहे जाने वाले, सबको धारण करने वाले, अन्नों का स्वाद लेने वाले और यजमानों को उत्तम आश्रय देने वाले हैं। यजमान उनके गुणों को जानते हैं ॥६॥

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥

तृणों को उखाड़कर खाने वाले पशु की तरह वे अग्निदेव निर्जन प्रदेश में स्थित शुष्क काष्ठों को पृथक् कर भस्मीभूत करते हैं। वे अग्निदेव स्वर्णिम मूंछ (ज्वाला) वाले और शुभ दाँतों वाले, बड़े विस्तृत और अपराजित सामर्थ्य वाले हैं ॥७॥

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥

जिन अग्निदेव की अंत्वग्गण अत्रि ऋषि के समान परिचर्या करते हैं, जो कुल्हाड़ी के समान काष्ठों को विनष्ट करते हैं, जो हविष्यान्न का उपभोग करते हैं; उन दीप्तिमान् अग्निदेव को अरणि स्वेच्छा से उत्पन्न करती है ॥८॥

आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९॥

हे अग्निदेव !आप हव्य पदार्थों का भक्षण करने वाले हैं। आप सम्पूर्ण जगत् के धारणकर्ता हैं। हमारी स्तुतियाँ आपको सुख देने वाली हों । मरणधर्मा स्तोताओं को आप तेजस्वी अन्नों और उत्तम मन(स्नेह) प्रदान करें ॥९॥

इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नृन् ॥१०॥

हे अग्ने !मन्यु को धारण करने वाले ऋषिगण आपके द्वारा प्रदत्त पशु (हवनीय पदार्थों को प्राप्त करते हैं। आप हवि न देने वाले कृपण को अत्रिऋषि के वशीभूत करें और अन्नों को चुराने वाले दस्युओं को वशीभूत करें ॥१०॥

# सूक्त ८

ऋषि – इष आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद – जगती

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥

हे बल से उत्पन्न अग्निदेव ! यज्ञ कर्म करने वाले पुरातन श्रेषगण अपने संरक्षण के निमित्त आपको भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं ।आप चिर पुरातन, आनन्ददायक, जगत् को धारण करने वाले, पूज्य, श्रेष्ठ गृह-पालक हैं ॥१॥

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२॥

हे अग्निदेव ! यजमानों ने आपको यज्ञ-वेदी में स्थापित किया है । आप अतिथि के समान पूजनीय और गृह स्वामी हैं । आप दीप्तिमान् ज्वालाओं वाले, उच्च केतु रूप ज्वालाओं वाले, अनेक रूप वाले, धन

देने वाले, अतीव सुखकारी, समिधाओं को जलाने वाले और हमें सब प्रकार से उत्तम संरक्षण देने वाले हैं ॥२॥

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥

हे उत्तम धनों के स्वामी अग्निदेव ! मनुष्यगण आपकी स्तुति करते हैं। आप यज्ञ-कर्मों को जानने वाले, सत्य-विवेचक, रत्न-दान करने वालों में श्रेष्ठ, गुह्य रूप में रहने वाले, सबके लिए दर्शनीय, अति शब्दवान्, उत्तम रूप से पूजनीय और घृत-सिञ्चन से अति शोभायमान होते हैं ॥३॥

त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥

हे अग्निदेव ! आप सबको धारण करने वाले हैं। हम प्रचुर स्तोत्रों से स्तुति करते हुए, नमस्कारपूर्वक अभिवादन करते हुए आपके सम्मुख आते हैं । हे अंगिराओं में श्रेष्ठ देव ! आप भली प्रकार प्रदीप्त होकर उत्तम दीप्तिमान् ज्वालाओं से हमारी वियों को ग्रहण करें । हम मनुष्यों को कीर्ति प्रदान करें ॥४॥

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।

पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

हे अग्निदेव ! विविध रूपों वाले आप सभी यजमानों को पहले के समान अन्नों से अभिपूरित करते हैं। आप बारम्बार सभी कर्मों में पूजित होते हैं । आप अपनी सामर्थ्य से विविध अन्नों के स्वामी हैं । आपकी तेजस्वी दीप्तियों को कोई दबा सकने में समर्थ नहीं है ॥५॥

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥

हे युवा अग्निदेव ! आप उत्तम प्रकार से प्रज्वलित होने वाले हैं। देवों ने आपको हवि वहन करने वाले दूत रूप में प्रतिष्ठित किया है । घृत आधार से प्रदीप्त होकर हवि ग्रहण करने वाले हे अग्निदेव ! अत्यन्त वेगवान् और तेजस्वीरूप आपको लोगों ने बुद्धि का प्रेरक और चक्षुरूप मानकर धारण किया है ॥६॥

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७॥

हे अग्निदेव ! सुख की अभिलाषा करने वाले पुरातन यजमान आपको उत्तम समिधाओं से, आहुतियों और घृत से प्रदीप्त करते हैं ।

ओषधियों आदि से सिञ्चित होकर वृद्धि को प्राप्त हुए, आप पृथ्वी की सतहों पर अन्नों में व्याप्त होकर अवस्थित हैं ॥७॥

# सूक्त ९

ऋषि – गय आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद – अनुष्टुप, ५,७ पंक्ति

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥१॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! हम मनुष्य हवि पदार्थों से युक्त होकर आपकी उत्तम स्तुति करते हैं। आप सम्पूर्ण उत्पन्न जीवों को जानने वाले हैं। आप हमारी हवियों को देवों तक पहुँचाने वाले हैं ॥१॥

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२॥

सभी यज्ञ जिन अग्निदेव का अनुगमन करते हैं ।अन्न और यश की कामना करने वाले यजमानों के हव्य जिन्हें प्राप्त होते हैं, वे अग्निदेव हविदाताओं और कुश उच्छेदक यजमानों के घर, 'होता' रूप में प्रतिष्ठित होते हैं ॥२॥

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३॥

मनुष्यों का पोषण करने वाले अग्निदेव उत्तम रीति से यज्ञ-सम्पन्न करने वाले हैं । दो अरणियाँ इन अग्निदेव । को नये शिशु की तरह उत्पन्न करती हैं ॥३॥

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४॥

हे अग्निदेव ! कुटिल गति वाले सर्प या अश्व के शिशु के समान आप अति दुर्गमता से धारण किए जाने वाले हैं । जौ के खेत में प्रविष्ट हुआ पशु जैसे जौ को खा जाता है, उसी प्रकार वनों में प्रविष्ट हुए आप वनों को भस्म कर देते हैं ॥४॥

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५॥

अग्नि की धूम्रयुक्त शिखायें सर्वत्र व्याप्त होती हैं । लोहार अस्त्रादि द्वारा अग्नि को प्रवृद्ध करते हैं । यह संवर्द्धित अग्नि तीनों लोकों में व्याप्त होती है । कर्मकार (लुहार आदि) जिस प्रकारे धौंकनी (धमने

यन्त्र) द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, ये अग्निदेव उसी प्रकार स्वयं तेजस्वी बन जाते हैं ॥५॥

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६॥

हे अग्निदेव ! हम आपके मित्र भाव से युक्त होकर आपके निमित्त प्रशंसात्मक स्तोत्रों से आपका स्तवन करते हैं। आप अपने रक्षण सामर्थ्यों से संरक्षित कर हमें पाप कर्मों से पार करें और द्वेष करने वाले बाहरी शत्रुओं से भी पार करें ॥६॥

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

हे बलवान् अग्निदेव ! आप हम मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न बनायें । आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करें और हमें सब प्रकार से पोषण प्रदान करें । अन्नों की प्राप्ति हमारे निमित्त सुगम हो । हे आग्ने ! युद्धों में हमें अग्रणी बनाने का यत्न करें ॥७॥

# सूक्त १०

ऋषि – गय आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद – अनुष्टुप, ४, ७ पंक्ति

अग्न ओजिष्ठमा भर दयुम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

हे निर्बाध गति वाले अग्निदेव ! ओजस्विता प्रदान करने वाली सम्पदा हमें प्रदान करें । हे देव ! हमें प्रशंसनीय धन और शक्ति प्राप्ति के मार्ग का दिग्दर्शन करायें ॥१॥

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२॥

हे अग्ने ! आप अत्यन्त विलक्षण कर्मों का सम्पादन करने वाले हैं। हमारे उत्तम यज्ञादि कर्मों से प्रसन्न होकर आप हमें श्रेष्ठ बल प्रदान करें ।आप असुरों को पराभूत करने में समर्थ हैं ।आप सूर्य सदृश चारों ओर व्याप्त हों ॥२॥

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥३॥

हे अग्निदेव ! उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करने वाले मनुष्यों को आप श्रेष्ठ धनादि प्राप्त कराते हैं। आपकी स्तुति करने वाले हम भी उत्तम धनादि की वृद्धि करते हुए पुष्टि को प्राप्त हों ॥३॥

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४॥

हे आह्लाद प्रदायक अग्निदेव ! जो मनुष्य उत्तम वाणियों से आपका स्तवन करते हैं, वे अश्वयुक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। आपके उत्तम बलों से वे बलवान् होते हैं। उनकी उत्तम कीर्ति स्वर्ग से भी अधिक विस्तृत होती है, ऐसे लोगों को आप निश्चय ही जानते हैं ॥४॥

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५॥

हे अग्निदेव ! आपकी अत्यन्त चंचल और दीप्तिमती रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं। वे विद्युत् के समान शब्द करती और अन्न की

कामना से गमनशील मनुष्यों और वेगवान् रथ के समान सर्वत्र संचरित होती हैं ॥५॥

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप शीघ्र ही हमारी रक्षा करें । हमें धनादि ऐश्वर्य से युक्त करके हमारी आपत्तियों का निवारण करें । हमारे पुत्र-बन्धु आदि आपकी स्तुतियाँ करते हुए सम्पूर्ण अभिलाषाओं को प्राप्त करने वाले हों ॥६॥

त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

हे अंगिराओं में श्रेष्ठ अग्निदेव ! पुरातन ऋषियों ने आपकी स्तुतियाँ की हैं, आप उपास्य रहे हैं । वैभवशाली शत्रुओं का ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें। हम यज्ञादि कार्यों में होता रूप में आपकी स्तुति करने वाले हैं। हमारी स्तुतियों को बल दें । युद्ध में भी अपने बलों से हमारी वृद्धि करें ॥७॥

# *सूक्त ११*

ऋषि – सुतंभर आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –जगती

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥

प्रजा की रक्षा करने वाले, जागृति एवं दक्षता प्रदान करने वाले अग्निदेव याजकों को प्रगति का नवीन पथ प्रशस्त करने के लिए प्रकट हुए हैं । घृत की आहुतियों से अधिक प्रदीप्त होकर विराट् आकाश का स्पर्श करने में समर्थ, तेज से युक्त पवित्रता प्रदान करने वाले आप साधकों के लिए (अनुदान देने हेतु) चमकते हैं ॥१॥

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२॥

यज्ञ की पताका वाले रथ पर देवताओं के साथ बैठने वाले पुरोहित अग्निदेव को, याजक तीन स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में भली-

भाँति प्रज्वलित करते हैं। सत्कर्म में निरत यज्ञ करने के इच्छुक अग्निदेव अपने स्थान पर (यज्ञकुण्ड में) यज्ञ करने के लिए स्थित होते हैं ॥२॥

असम्मृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप मातृ रूप दो अरणियों से निर्विघ्न रूप से जन्म लेते हैं। आप मेधावी, पवित्र करने वाले और स्तुत्य हैं। आपको यजमान अपनी.हितकामना से प्रज्वलित करते हैं। पूर्वकालीन ऋषियों ने आपको घृत से प्रवृद्ध किया था । आहुतियों से प्रवृद्ध आपका धूम्र, केतु रूप में आकाश तक व्याप्त होता है ॥३॥

अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४॥

सब श्रेष्ठ कार्यों को सिद्ध करने वाले अग्निदेव हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों । सभी मनुष्य घर-घर में अग्निदेव की स्थापना करते हैं । वे हव्यवाहक अग्निदेव देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । स्तोतागण ज्ञान-सम्पन्न यज्ञ कर्म में अग्निदेव की सम्यक् स्तुतियाँ करते हैं ॥४॥

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।

त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५॥

हे अग्निदेव ! हमारे अतिशय मधुर वचन आपके निमित्त निवेदित हैं। ये स्तोत्र आपके हृदय में सुख प्रदायक हों। जैसे नदियाँ समुद्र को पूर्ण कर उसका बल बढ़ाती हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ आपको पूर्ण कर आपका बल बढ़ाने वाली हों ॥५॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६॥

हे अग्निदेव ! अंगिरावंशी ऋषियों ने गहन स्थलों में स्थित और विभिन्न वनस्पतियों में व्याप्त आपको, अन्वेषण करके प्राप्त किया। आप अत्याधिक बलपूर्वक घर्षण करने के उपरान्त अरणियों से उत्पन्न होते हैं । अतएव मनीषीगण आपको शक्ति के पुत्र कहकर सम्बोधित करते हैं ॥६॥

## सूक्त १२

ऋषि – सुतंभर आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –त्रिष्टुप

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१॥

ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से अतिशय महान्, यज्ञ-योग्य, जल की वृष्टि करने वाले, प्राणों के आधार और अभीष्टवर्धक हैं। यज्ञ के मुख में सिञ्चित घृत धारा के सदृश हमारी स्तुतियाँ अग्निदेव के लिए प्रीतिकारक हों ॥१॥

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२॥

हे अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों को आप जानने वाले हैं, हमारी स्तुतियों का अनुमोदन करें । प्रचुर जल-वृष्टि के लिए हमारे अनुकूल हों । हम बल-संयुक्त होकर यज्ञ में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं करते और न ही

वैदिक कार्य के विधान को भंग करते हैं। आप अत्यन्त दीप्तिमान् हैं और कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । आपका हम स्तवन करते हैं ॥२॥

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप जल-वृष्टि करने वाले हैं। आप हमारे किस श्रेष्ठ यज्ञ-कर्म द्वारा हमारे नवीन स्तोत्रों को जानने वाले होंगे ? ऋतुओं का संरक्षण करने वाले अग्निदेव हमें जानें । सर्वदा येजन करने वाले हम, क्या धनों के अधीश्वर अग्निदेव को नहीं जानते ? (अर्थात् निश्चित ही जानते हैं ।) ॥३॥

के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४॥

हे अग्निदेव ! कौन शत्रुओं को बाँधने वाले हैं ? कौन लोगों का पोषण करते हैं? कौन अति दीप्तिमान् और दानशील हैं ? कौन असत्य-धारकों की रक्षा करते हैं? असत्य वचनयुक्तों की रक्षा कौन कर सकता है ? (अर्थात् आपके कृपा पात्र व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं) ॥४॥

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५॥

हे अग्निदेव ! सर्वत्र व्याप्त आपके ये मित्रजन आपकी उपासना न करने से दुःखी हुए थे, तदनन्तर आपकी उपासना करके वे सुखों से युक्त हुए। हम आपके निमित्त सरल आचरण करते हैं, फिर भी जो हमारे साथ कुटिल वचनों से युक्त व्यवहार करते हैं, वे शत्रु स्वयं अपना अनिष्ट करके नष्ट होते हैं ॥५॥

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप दीप्तिमान् और इच्छित कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। जो यजमान हृदय से नमस्कारयुक्त स्तोत्रों से आपका स्तवन करते हैं और यज्ञ का सम्यक् पालन करते हैं, उनका घर विस्तीर्ण हो। आपकी भली प्रकार परिचर्या करने वाले वे यजमान कामनाओं को सिद्ध करने वाले पुत्रादि प्राप्त करते हैं ॥६॥

## *सूक्त १३*

ऋषि – सुतंभर आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –गायत्री

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि ।
अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोता अर्चन करते हुए आपका आवाहन करते हैं एवं स्तुति करते हुए हम अपनी रक्षा के निमित्त आपको प्रज्वलित करते हैं ॥१॥

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।
देवस्य द्रविणस्यवः ॥२॥

द्रव्य लाभ की कामना से हम आकाशव्यापी, तेजस्वी अग्निदेव के सिद्धि प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तवन करते हैं ॥२॥

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।

स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३॥

यज्ञ के साधन रूप और मनुष्यों के सहायक, अग्निदेव हमारी स्तुतियों को सुनें और देवताओं तक हमारे हव्य को पहुँचाएँ ॥३॥

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४॥

हे अग्निदेव ! हर्ष प्रदायक, वरणीय और यज्ञ साधक आप महान् हैं। सब यजमान आपको प्रतिष्ठित कर यज्ञ अनुष्ठान पूर्ण करते हैं ॥४॥

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप अन्नों को प्रदान करने वाले और उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किये जाने योग्य हैं। मेधावी स्तोतागण सम्यक् स्तुतियों से आपको प्रवृद्ध करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें उत्तम पराक्रमयुक्त तेजस्वी बलों को प्रदान करें ॥५॥

अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि ।
आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार चक्र की नाभि के चारों ओर 'आरे' लगे होते हैं, उसी प्रकार आप देवों के सब ओर व्याप्त होते हैं। आप हमें विविध प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥६॥

# सूक्त १४

ऋषि – सुतंभर आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –गायत्री

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥१॥

हे मनुष्यो ! इन अविनाशी अग्निदेव को उत्तम स्तोत्रों से प्रवृद्ध करें । भली प्रकार प्रज्वलित होने पर वे हमारे हव्य पदार्थों को देवों तक पहुँचाएँ ॥१॥

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥२॥

साधकगण यज्ञों में दिव्य गुण-सम्पन्न, अमर और मनुष्यों के मध्य में परम पूजनीय उन अग्निदेव की उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥२॥

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता ।

अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥३॥

अनेकों स्तोतागण यज्ञ में सूक् के साथ घृत-धारा बहाते हुए देवों के लिए हवियाँ वहन करने के उद्देश्य से दिव्य गुण-सम्पन्न अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥३॥

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।
अविन्दद्गा अपः स्वः ॥४॥

अरणि-मंथन से उत्पन्न अग्निदेव अपने तेज से अन्धकार और राक्षसों को विनष्ट करते हुए प्रकाशित होते हैं । इन अग्निदेव से ही किरण, जल और सूर्यदेव प्रकट होते हैं ॥४॥

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत ।
वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५॥

हे मनुष्यो ! आप स्तुति किये जाने योग्य और ज्ञानी अग्निदेव का पूजन करें। वे घृत की आहुतियों से प्रदीप्त ज्वालाओं वाले हैं। वे अग्निदेव हमारे आवाहन को सुनें और जानें ॥५॥

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६॥

ऋत्विग्गण स्तोत्रों के साथ घृत की आहुतियों द्वारा, स्तुति की कामना वाले ध्यानगम्य देवों के साथ सर्वद्रष्टा अग्निदेव को प्रवृद्ध करते हैं ॥६॥

# सूक्त १५

ऋषि – धरूण अंगिरस:
देवता – अग्नि । छंद –त्रिष्टुप

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥१॥

ये अग्निदेव हविरूप घृत से प्रसन्न होते हैं। ये अतिशय बलशाली, अत्यन्त सुखकारी, धनों के अधीश्वर, हव्यवाहक, गृहप्रदाता, विधाता, क्रान्तदर्शी, यशस्वी, श्रेष्ठ, जानने योग्य और मेधावी हैं। ऐसे अग्निदेव के लिए हम स्तुतियों की रचना करते हैं ॥१॥

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नृञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥२॥

जो यजमान ऋत्विजों द्वारा स्वर्ग को धारण करने वाले, यज्ञ में आसीन, नेतृत्वकर्ता, देवों को आवाहित कर प्रतिष्ठित करते हैं, वे (यजमान)

यज्ञ के धारक, सत्यस्वरूप प्रतिष्ठित अग्निदेव को स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥२॥

अङ्होयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिङ्हं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥३॥

जो यजमान श्रेष्ठ अग्नि के निमित्त दुष्टों द्वारा दुष्प्य हविष्यान्न अर्पित करते हैं, वे यजमान निष्पाप शरीर से युक्त होकर वृद्धि पाते हैं। वे नवजात अग्निदेव क्रुद्ध सिंह की भाँति हमारे सभी संगठित शत्रुओं को विनष्ट करें और वर्तमान शत्रुओं को हमसे दूर स्थित करें ॥३॥

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४॥

सर्वत्र प्रख्यात ये अग्निदेव माता के सदृश सभी जीवों का पोषण करते हैं। ये जन-जन को धारण करने और सबके द्रष्टा रूप होने के कारण स्तुत्य है । प्रज्वलित होकर ये सभी अन्नों को जीर्ण (पक्व) कर देते हैं और विविध रूपों में ये अपनी शक्ति से परिव्याप्त होते हैं ॥४॥

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५॥

विस्तीर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाले, धन के धारक हे दिव्य अग्निदेव ! हविष्यान्न आपके सम्पूर्ण बलों की उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे तस्कर अपहृत धन को गुफा में छिपाकर उसकी रक्षा करता है । हे अग्निदेव ! हमें विपुल धन-प्राप्ति का उत्तम मार्ग प्रदर्शित करें; अत्रि मुनि को प्रसन्न करें ॥५॥

# सूक्त १६

ऋषि – पुरूरात्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप, ५ पंक्ति

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥१॥

याजकगण मित्र के समान, तेजस्वी अग्निदेव को स्तुति के लिए अपने सम्मुख स्थापित करके उसमें प्रचुर मात्रा में हविष्यान्न की आहुति प्रदान करते हैं ॥१॥

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२॥

जो अग्निदेव देवताओं के लिए अनुकूल मार्गों से हव्यादि पदार्थों को पहुँचाते हैं, जो बाहुबल की दीप्तियों से प्रकाशित होते हैं, वे अग्निदेव यजमानों के लिए देवों का आह्वान करने वाले हैं। वे सूर्यदेव के सदृश सम्पूर्ण वरणीय धनों को प्रदान करने वाले हैं ॥२॥

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३॥

सब ऋत्विग्गण हव्य पदार्थों और उत्तम स्तोत्रों द्वारा बहुत शब्द युक्त विशिष्ट अग्निदेव में बलों को भली-भाँति स्थापित करते हैं । हम सब इस प्रवृद्ध, तेजस् सम्पन्न और ऐश्वर्यवान् अग्निदेव के साथ मित्र, भाव में रहकर स्तुतियाँ करते हैं ॥३॥

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४॥

हे अग्निदेव ! हमें अभिलषित, श्रेष्ठ, पराक्रमयुक्त बलों से युक्त करें । जैसे पृथ्वी और आकाश महान् सूर्यदेव के आश्रय पर अवस्थित हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण अन्न और धन आपके आश्रय से हम प्राप्त करते हैं ॥४॥

नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

हे अग्निदेव ! हम यजमान आपकी स्तुति करते हैं। आप शीघ्र ही हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों और हमारे निमित्त वरणीय धन को धारण

करें । हम स्तोतागण आपकी स्तुति करते हैं। आप युद्ध में हमें रक्षण-साधनों से समृद्ध करें ॥५॥

# सूक्त १७

ऋषि – पुरूरात्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप, ५ पंक्ति

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार पूरु ऋषि ने अपने द्वारा सम्पादित उत्तम यज्ञ में अपनी रक्षा की कामना से आपकी स्तुति की, उसी प्रकार मनुष्यगण भी अपने यज्ञ में अपनी रक्षा के लिए उत्तम स्तुतियों के साथ आपका आवाहन करते हैं ॥१॥

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२॥

हे धर्मानुयायी स्तोताओ ! आप अत्यन्त श्रेष्ठ और यशस्वी कर्म वाले हैं। जो स्तुत्य हैं, जिनका तेज अति विलक्षण है और जो दुःखरहित हैं,

ऐसे उन अग्निदेव की आप (स्तोतागण) अपनी श्रेष्ठ बुद्धियुक्त वाणियों से स्तुति करें ॥२॥

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥

जो अग्निदेव अपने बल और स्तुतियों से सामर्थ्ययुक्त हैं, जो सूर्यदेव की भाँति दीप्तिमान् हैं, जिनकी विस्तीर्ण ज्वालाओं और तेजों से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशयुक्त होता है, इनके वर्चस् से सूर्यदेव भी प्रकाशयुक्त हुए हैं ॥३॥

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४॥

श्रेष्ठ बुद्धि-सम्पन्न ऋत्विग्गण उन दर्शनीय अग्निदेव का यजन करके धन-संयुक्त रथ प्राप्त करते हैं। हव्यवाहक वे अग्निदेव सम्पूर्ण प्रजाओं द्वारा सम्यक् रूप से प्रशंसित होते हैं ॥४॥

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

हे अग्निदेव ! जिस धन को स्तोतागण आपकी स्तुतियों द्वारा प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमें शीघ्र प्राप्त कराये । हे बल संयुक्त अग्निदेव ! हमें अभीष्ट अन्नों को देकर रक्षित करें । हमें कल्याणकारी पशुधन से संयुक्त करें और संग्राम में हमारी वृद्धि का यत्न करें ॥५॥

# सूक्त १८

ऋषि – द्वितो मृक्तवाहा आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप, ५ पंक्ति

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१॥

ये अग्निदेव बहु प्रिय (सभी के प्रिय) हैं । ये प्रातः सवन में-प्रजाओं में अतिथि के तुल्य पूजनीय और स्तुत्य हैं। ये अविनाशी अग्निदेव यजमानों के मध्य सम्पूर्ण हव्य-पदार्थों की कामना करते हैं ॥१॥

द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२॥

हे अग्निदेव ! अत्रि पुत्र द्वित अंष आपके निमित्त पवित्र हव्य लेकर पहुँचते हैं। उन्हें आप अपने बल से महत्ता प्रदान करें, क्योंकि वे आपके निमित्त सर्वदा ही सोमरस और स्तुतियाँ प्रस्तुत करते हैं ॥२॥

तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३॥

हे अश्वदाता अग्निदेव ! आप दीर्घ आयु वाले और तेजस्वी स्वरूप वाले हैं । हम अपने धनी यजमानों के लिए आपका उत्तम स्तुतियों से आवाहन करते हैं, जिससे उन धनिकों का रथ जीवन-संग्राम में निर्बाधित होकर गमन करता रहे ॥३॥

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४॥

जो अत्वग्गण अनेक प्रकार से यज्ञादि कार्यों को सम्पादन करते रहते हैं, जो उत्तम स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञादि कर्मों की रक्षा कर इन्हें चैतन्य बनाये रखते हैं, वे ऋत्विग्गण अपने यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में, विस्तृत कुशाओं पर विपुल हविष्यान्न स्थापित करते हैं ॥४॥

ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! आपकी स्तुति करने के बाद जो धनिक यजमान हमें पचास अश्व प्रदान करता हैं । आप उस यजमान को दीप्तिमान् और बहुत सेवकों से युक्त महान् अन्न प्रदान करें ॥५॥

# सूक्त १९

ऋषि –वव्रिरात्रेय
देवता – अग्नि । छंद –गायत्री, ३-४ अनुष्टुप, ५ विराड् रूपा

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत ।
उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥१॥

वे अग्निदेव माता रूप पृथ्वी की गोद में प्रकट होकर सबको देखते हैं। वे अग्निदेव वव्रि अषि की स्थिति के अनुरूप उनकी हवियाँ ग्रहण करें, अथवा शरीर धारियों के शरीर की स्थिति के अनुरूप उनका पोषण करें ॥१॥

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति ।
आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२॥

हे अग्निदेब ! आपके प्रभाव को जानकर जो याज्ञिक सर्वदा आपका आवाहन करते हैं और हवि तथा स्तोत्रों द्वारा आपके बलों की रक्षा

करते हैं, वे शत्रुओं के दुर्गम नगरों को तोड़कर उसमें प्रवेश कर जाते हैं ॥२॥

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३॥

महान् स्तोत्रों का उच्चारण करने वाले, अन्नों को चाहने वाले, कण्ठ में स्वर्ण-अलंकारों को धारण करने वाले और जन्म लेने वाले मनुष्य अति मधुर स्तोत्रों द्वारा अग्नि की दीप्तियों को प्रवृद्ध करते हैं ॥३॥

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४॥

यज्ञ के समान हविष्यान्न को अपने जठर में रखने वाले, शत्रुओं द्वारा अहिंसित रहकर शत्रुओं के हिंसक वे अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के सहायक रूप में हैं। वे अग्निदेव दूध के समान-कामनायोग्य और निर्दोष होकर हमारे प्रीतिकर स्तोत्रों का श्रवण करें ॥४॥

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥

हे प्रदीप्त अग्निदेव ! काष्ठों में क्रीड़ा करते हुए वायु द्वारा प्रेरित, भस्म द्वारा भासित होने वाले आप हमारी ओर उन्मुख हों । काष्ठों के वक्ष में स्थित आपकी ज्वालाएँ अत्यन्त तीक्ष्ण और शत्रुविनाशक हैं। वे ज्वालाएँ हमारे निमित्त तीक्ष्ण (कष्टदायक) न हों ॥५॥

# सूक्त २०

ऋषि – प्रयस्वन्त आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप,४ पंक्ति

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१॥

हे अन्न प्रदायक अग्निदेव ! हम लोगों द्वारा प्रदत्त हव्यरूप जिस धन को आप स्वीकार करते हैं, हमारी स्तुतियों के साथ उस व्य रूप धन को, देवों तक पहुँचाएँ ॥१॥

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२॥

हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति पशु आदि धन से संयुक्त होकर भी आपको हवि प्रदान नहीं करता, वह व्यक्ति आपके उग्र बलों का सामना कर बल-विहीन हो जाता है । जो अन्यान्य वैदिक कर्मों से द्वेष या विरोध-भाव रखता है; वह भी आपके द्वारा हिँसित होता हैं ॥२॥

होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप देवों के आह्वानकर्ता, बलों को प्रदान करने वाले और अन्नों से सम्पन्न हैं। हम आपका वरण करते हैं । यज्ञों में श्रेष्ठ आपकी हम उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥३॥

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥४॥

हे बलवान् अग्निदेव ! हम प्रतिदिन आपके आश्रय में संरक्षित हों । हे उत्तम कर्म वाले अग्निदेव ! हम लोग यज्ञादि कार्यों के निमित्त धन-प्राप्ति का पुरुषार्थ करें । (जिससे) हम लोग गवादि पशु धन और उत्तम वीर पुत्रों को पाकर सुखी हों, आप ऐसा ही करें ॥४॥

# सूक्त २१

ऋषि – सस आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप,४ पंक्ति

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१॥

हे अग्निदेव ! हम मनु के सदृश आपको स्थापित करते और मनु के सदृश ही प्रज्वलित करते हैं । हे अंगिरा अग्निदेव ! मनु के सदृश ही देवों के अभिलाषी यजमानों के निमित्त आप देवों का यज़न करें ॥१॥

त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२॥

हे अग्निदेव ! स्तोत्रों द्वारा भली प्रकार प्रसन्न होकर आप मनुष्यों के लिए प्रदीप्त होते हैं। भली प्रकार उत्पन्न हे अग्निदेव ! घृतयुक्त हवियों से भरे पात्र आपको निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥२॥

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३॥

हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! सब देवों ने प्रसन्न होकर, आपको देवों के दूत रूप में नियुक्त किया है। अत: यज्ञों में यजमान आपकी परिचर्या करते हुए देवों को बुलाने के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥३॥

देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिहृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! मनुष्यगण देवों का यजन करने के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं । आप हवियों द्वारा प्रवृद्ध होकर दीप्तिमान् होते हैं। आप 'सस' अष के यज्ञ की वेदों में प्रतिष्ठित हों अथवा कृषि-हरीतिमा के रूप में प्रकट हों ॥४॥

# सूक्त २२

ऋषि – विश्वसामा आत्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप,४ पंक्ति

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१॥

हे विश्वसामा ऋषे ! आप पवित्र दीप्ति युक्त उन अग्निदेव का अत्रि ऋषि के समान पूजन करें। ये अग्निदेव सब ऋषियों द्वारा स्तुत्य हैं । ये देवों के आवाहक और अत्यन्त पूजनीय हैं ॥१॥

न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२॥

हे यजमानो ! सब प्राणियों को जानने वाले, दिव्य यज्ञकर्ता अग्निदेव को आप स्थापित करें, जिससे देवों के लिए प्रीतिकर और यज्ञ के साधन रूप हवि-पदार्थ हम अग्निदेव के निमित्त प्रदान करें ॥२॥

चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप ज्ञान से सम्पन्न और मन से दीप्तिमान् हैं। अपनी रक्षा के निमित्त हम सब मनुष्य आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं और आपको श्रेष्ठ वियों से सन्तुष्ट करते हुए स्तुति करते हैं ॥३॥

अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥

हे बलपुत्र अग्निदेव ! आप हमारे इन उत्तम वचनों को जानें । हे सुन्दर हुनु (ठोड़ी) और नासिका वाले गृहपालक अग्निदेव ! अत्रि वंशज आपको उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं और उत्तम वाणियों द्वारा सुशोभित करते हैं ॥४॥

# सूक्त २३

ऋषि – द्युमनो प्रयस्वन्त विश्वचर्षणिरात्रेय:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप,४ पंक्ति

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१॥

हे अग्निदेव ! 'द्युम्न' ऋषि के लिए शत्रुओं का ऐश्वर्य जीतकर लाने वाला एक वीर पुत्र प्रदान करें; जो स्तोत्रों से युक्त होकर युद्धों में सम्पूर्ण शत्रुओं को पराभूत कर सके ॥१॥

तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप सत्यस्वरूप, अद्भुत और गवादियुक्त अन्नों को देने वाले हैं। आप हमारे निमित्त शत्रुओं की सेना का ऐश्वर्य जीतकर हमें प्रदान करें ॥२॥

विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।

होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप देवों का आह्वान करने वाले 'होता' रूप और सबके हितकारी हैं। ये सम्यक् प्रीति रखने वाले और यज्ञार्थ कुश लाने वाले ऋत्विग्गण आपसे वरणीय धनों की याचना करते हैं ॥३॥

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४॥

हे अग्निदेव ! वे विश्वचर्षणि ऋषि शत्रुओं के संघर्षक बल को धारण करें । हे तेजस्वी अग्निदेव ! हमारे घरों में धनों का प्रकाश विस्तीर्ण करें । हे पापशोधक अग्निदेव ! आप उत्तम तेजों से युक्त होकर देदीप्यमान हों ॥४॥

# सूक्त २४

ऋषि – गौपायना लौपायना वा बंधुः सुबंधु, श्रुतबंधुर्वी प्रबंधुश्च
देवता – अग्नि । छंद –द्विपदा विराट

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे अति निकट रहने वाले हों, हमारे श्रेष्ठ संरक्षक और मंगलकारी हों ॥१॥

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥२॥

सभी को आश्रय देने वाले, धनवानों में अग्रगण्य हे अग्निदेव ! आप हमारे पास सहजता से आएँ और तेजस्वितायुक्त होकर हमें धन प्रदान करें ॥२॥

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥३॥

हे अग्निदेव !हम लोगों को आप जानें । हमारे आवाहन को सुनें और समस्त पापाचारियों से हमें रक्षित करें ॥३॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४॥

हे तेजस्वी और प्रकाशवान् अग्निदेव ! मित्र आदि स्नेही परिजनों के लिए सुख की कामना करते हुए निश्चित ही हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥४॥

# सूक्त २५

ऋषि: वसूयव आत्रेया:
देवता – अग्नि । छंद –अनुष्टुप

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१॥

हे यजमानो ! अपनी रक्षा की कामना से आप दिव्य अग्निदेव का स्तवन करें। वे अग्निदेव हमें आश्रय-स्थान प्राप्त करायें। ऋषियों द्वारा पुत्र रूप में पोषित, सत्य-स्वरूप वे अग्निदेव हमें शत्रुओं से पार लगायें ॥१॥

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२॥

पूर्वकाल के ऋषियों और देवों ने जिन अग्निदेव को प्रज्वलित किया था। जो अग्निदेव देवों के आह्वानकर्ता, प्रसन्नतादायी जिह्वा (ज्वाला)

वाले, उत्तम दीप्तियों वाले तथा शुभ प्रभा वाले हैं। वे अग्निदेव सत्य-संकल्पों से अटल हैं ॥२॥

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३॥

है अग्निदेव ! आप उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने वाले और वरणीय हैं। आप अपनी श्रेष्ठ धारणायुक्त और उत्कृष्ट बुद्धि से हमारे हव्यादियुक्त स्तोत्र से संतुष्ट होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३॥

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४॥

जो अग्निदेव, देवों में प्रतिष्ठित हैं और मनुष्यों के आवाहन से उनके बीच भी प्रविष्ट हैं । जो देवों के लिए हव्यादि पदार्थ वहन करने वाले हैं । हे यजमानो ! उने अग्निदेव की आप बुद्धिपूर्वक स्तुतियों द्वारा सेवा करें ॥४॥

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५॥

अग्निदेव हविदाता यजमानों को ऐसा पुत्र दें, जो विविध अन्नों से युक्त, बहुत स्तोत्र करने वाला, उत्तम, अवध्य और उत्तम कर्मों से पूर्वनों का यश बढ़ाने वाला हो ॥५॥

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६॥

अग्निदेव हम लोगों को ऐसा पुत्र हैं, जो हमारा साथ देने वाला, शत्रुओं को परास्त करने वाला और सत्यपालक हो । साथ ही अग्निदेव हमें शत्रु-विजेता, अपराजेय, द्रुतगामी अश्व भी प्रदान करें ॥६॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७॥

अग्निदेव की शीघ्र प्रभावकारी स्तोत्रों से स्तुति की जाती हैं। वे दीप्तिमान् अग्निदेव, हमें अपरिमित धन-धान्य प्रदान करने की कृपा करें ॥७॥

तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८॥

हे अग्निदेव ! आपकी शिखायें सर्वत्र दीप्ति से युक्त हैं । आप सोमलता कूटने वाले पाषाण की तरह महत्ता से युक्त हैं । आप स्वयं प्रकाश से युक्त हैं । आप मेघ-गर्जन के सदृश शब्द से युक्त हैं ॥८॥

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥

हम धन के अभिलाषी मनुष्य बलवान् अग्निदेव की स्तोत्रों से भली प्रकार स्तुति करते हैं। ये उत्तमकर्मा अग्निदेव हम लोगों को शत्रुओं से वैसे ही पार करें, जैसे नाव नदी से पार कर देती है ॥९॥

# सूक्त २६

ऋषिः वसूयव आत्रेयाः
देवता – अग्नि, ९ विश्वे देवाः । छंद – गायत्री

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! देवताओं को प्रसन्न करने वाली ज्वालारूपी जिह्वा द्वारा, देवताओं को आमंत्रित करें और उनके निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥१॥

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥२॥

घृत से उत्पन्न होने वाले, अद्‌भुत तेजस्वी, सबको देखने वाले हे अग्ने ! आपकी हमें प्रार्थना करते हैं । हवि के सेवन के लिए आप देवों को यहाँ बुलायें ॥२॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

हे ज्ञानी अग्ने ! यज्ञानुरागी, तेजस्वी तथा महान् आपको हम यज्ञ में प्रज्वलित करते हैं ॥३॥

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये ।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥४॥

हे अग्ने ! आप सम्पूर्ण देवों के साथ हविदाता यज्ञमान के लिए यज्ञ में आकर अधिष्ठित हों । हम देवों का आवाहन करने वाले होतारूप में आपका वरण करते हैं ॥४॥

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप सोम-सवन करने वाले यजमान के लिए श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करें और आप देवों के साथ यज्ञ में बिछाये कुशाओं पर विराजमान हों ॥५॥

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि ।
देवानां दूत उक्थ्यः ॥६॥

हे सहस्रों शत्रु-जेता अग्निदेव ! आप हव्य-पदार्थों से प्रदीप्त होकर, स्तोत्रों से प्रशंसित होकर, देवों के दूत रूप में सभी धर्म-अनुष्ठानों को सम्यक्रूप से पुष्ट करते हैं ॥६॥

न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् ।
दधाता देवमृत्विजम् ॥७॥

है यजमानो ! आप सब अग्निदेव को भली प्रकार स्थापित करें । वे अग्निदेव प्राणिमात्र को जानने वाले, यज्ञ-सम्पादक, अति युवा तथा दीप्तिमान् हैं ॥७॥

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ।
स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८॥

हे ऋत्विजो ! आप अग्निदेव के विराजमान होने के लिए कुश बिछायें, जिससे तेजस्वी स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न आज देवों को भली प्रकार प्राप्त हो ॥८॥

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥९॥

मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार, मित्रदेव, वरुणदेव और अन्यान्य सभी देवगण अपनी प्रजाओं के साथ हमारे यज्ञ-स्थान में अधिष्ठित हों ॥९॥

# सूक्त २७

ऋषिः त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः, पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः भारतो श्वमेधश्च राजानः
देवता – अग्नि, ६ इन्द्राग्नि । छंद – त्रिष्टुप , ४-५ अनुष्टुप

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥

हे अग्ने ! हे वैश्वानर ! आप सज्जनों के स्वामी, ज्ञानवान्, बलशाली और ऐश्वर्यवान् हैं । त्रिवृष्ण के पुत्र त्र्यरुण ने शकट सहित दो वृषभ और दस सहस्र सुवर्णमुद्रा प्रदान करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी ॥१॥

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥

जिनने हमें सैकड़ों गौएँ (पोषक-प्रवाह) तथा बीसियों श्रेष्ठ धुरों (प्रयोजना) से योजित अश्व (शक्ति-प्रवाह) प्रदान किये हैं; हे वैश्वानर अग्ने ! आप श्रेष्ठ मंत्रों से वर्धित होकर ऐसेयरुण को सुखप्रद आश्रय प्रदान करें ॥२॥

एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥३॥

पूर्वकाल में हमारी वाणी से (अनेक स्तुतियों से युक्त (प्रभावित होकर 'त्र्यरुण' ने (हमें अनुदान देते हुए) कहा था-'यह लो'। उसी प्रकार हे अग्ने ! हमारी नवीन स्तुतियों से युक्त (प्रसन्न होकर, आपसे सुमति चाहने वाले हम (साधकों) से त्रसदस्यु' ने भी (हमें अनुदान देते हुए कहा-'यह लो' ॥३॥

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
ददद्दृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥४॥

हे अग्नि-परमेश्वर ! जब कोई विद्वान् पुरुष 'अश्वमेध' को लक्ष्य करके कहता है 'यह मेरा है, तब आप उस यत्नशील को ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) के लिए चारूप में दिव्य सम्पदा एवं श्रेष्ठ मेधा प्रदान करते हैं ॥४॥

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥५॥

जिस अश्वमेध से प्राप्त सौ (सैकड़ों) उक्षण (वृषभ या सेचन प्रवाह) हमें हर्षित करते हैं, उस अश्वमेध (दिव्य मेधा प्रवाह या राष्ट्र) के दान न्याशिर (तीन को मिलाकर एकाकार किये गये) सोम (पोषक तत्त्व) की भाँति हमें आनन्दित करें ॥५॥

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥६॥

हे इन्द्राग्ने ! सैकड़ों प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले अश्वमेध को आप श्रेष्ठ पौरुष एवं क्षात्रबल के साथ सूर्य के समान विशालती एवं अजरती प्रदान करें ॥६॥

# सूक्त २८

ऋषि: विश्ववारात्रेयी
देवता – अग्नि । छंद – १, ३ त्रिष्टुप, २ जगती ४ अनुष्टुप

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥१॥

सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त अग्निदेव दीप्तिमान् अन्तरिक्ष में अपने तेजों से प्रकाशित होते हैं और उषा के सम्मुख विस्तीर्ण होकर विशेष प्रभायुक्त होते है। उस समय इन्द्रादि देवों का स्तवन करती हुई पुरोडाश आदि और घृतादि से युक्त स्रुक् को लेकर विश्ववारा पूर्व की ओर से झाँकती हुई अग्नि की ओर बढ़ती हैं ॥१॥

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप भली-भाँति प्रज्वलित होकर अमृततत्त्व को प्रकाशित करते हैं । हव्यदाता यज्ञमान को आप कल्याण से युक्त

करते हैं। आप जिस यजमान के समीप जाते हैं, वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य को धारण करता है । हे अग्निदेव ! आपके आतिथ्य के अनुकूल हव्यादि पदार्थों को वह यजमान आपके सम्मुख स्थापित करता है ॥२॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव दयुम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप हम लोगों के उत्तम सौभाग्य (विपुल ऐश्वर्य) के लिए शत्रुओं को पराभूत करें ।आपका तेज श्रेष्ठतम हो । आप दाम्पत्य सम्बन्ध को सुखी और सुनियमित करें और शत्रुओं के तेज़ को दबा दें ॥३॥

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो दयुम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४॥

हे अग्निदेव ! जब आप प्रज्वलित होकर दीप्तिमान् होते हैं, तो आपकी शोभा का हम स्तवन करते हैं। आप अभीष्ट प्रदाता और तेजस्वी हैं तथा यज्ञों में भली प्रकार प्रदीप्त होते हैं ॥४॥

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर ।
त्वं हि हव्यवाळसि ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप यजमानों द्वारा आहूत होते हैं। आप शोभायुक्त यज्ञ के सम्पादक हैं । आप सम्यक् प्रदीप्त होकर इन्द्रादि देवों का यजन करें, क्योंकि आप ही हव्यादि पदार्थों को वहन करने वाले हैं ॥५॥

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे ।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६॥

हे अंत्वजो ! आप लोग हमारे यज्ञ में प्रवृत्त होकर हव्य वहन करने वाले अग्निदेव को आहुतियाँ अर्पित करें । स्तुतियों द्वारा उनकी परिचर्या करें और देवों के दूतरूप में उनका वरण करें ॥६॥

# सूक्त २९

ऋषि: गौरिवीति: शाक्त्य
देवता – इन्द्र, उशना । छंद –त्रिष्टुप,

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥

हे इन्द्रदेव मनु के यज्ञ में जो तीन गुण हैं और अन्तरिक्ष में उत्पन्न तीन दिव्य तेज हैं, उन्हें मरुद्गणों ने धारण किया है । हे इन्द्रदेव ! पवित्र बलों से युक्त मरुद्गण आपकी स्तुति करते हैं । आप इन मरुतों के द्रष्टा हैं ॥१॥

अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥२॥

जब मरुद्गणों ने अभिषुत सोम के पान से हर्षित इन्द्रदेव की स्तुति की, तब इन्द्रदेव ने वज्र हाथ में धारण करके वृत्र को मारा और उसके द्वारा रोके गये बृहद् जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया ॥२॥

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥३॥

हे महान् मरुतो !इन्द्रदेव सहित आप सब भली प्रकार अभिषुत हुए इस सोमरस का पान करें । इस सोम युक्त हवि को पान करते हुएआप यजमानों को गौएँ प्राप्त करायें । इसी सोम को पीकर इन्द्रदेव ने वृत्र को मारा था॥३॥

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥४॥

सोमपान करने के बाद इन्द्रदेव ने द्यावा-पृथिवी को निश्चल किया तथा आक्रामक मुद्रा में इन्द्रदेव ने मृगवत् माया करने वाले वृत्र को भयभीत किया। भय से छिपकर वह वृत्र लम्बी श्वास ले रहा था, तब इन्द्रदेव ने उसके प्रपंच को नष्ट कर उसे मार डाला ॥४॥

अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य की आगे बढ़ने वाली घोड़ियों (किरणों ) को आपने एतश (अश्व संज्ञक शक्तिशाली प्रवाह) के साथ संयुक्त किया। आपके

कार्य से हर्षित होकर विश्वेदेवों ने आपके पान के लिए सोम प्रस्तुत किया ॥५॥

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥६॥

महान् इन्द्रदेव ने शत्रु के निन्यानवे नगरों को एक ही क्षण में वज्र से ध्वस्त कर दिया और द्युलोक को थामकर स्थित किया, तब मरुद्गणों ने संग्राम-स्थल में त्रिष्टुप् छन्द युक्त ऋचाओं से इन्द्रदेव की स्तुतियाँ सम्पन्न की ॥६॥

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥७॥

इन्द्रदेव के मित्ररूप अग्नि ने इन्द्र की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए तीन सौ महिषों (प्राणधाराओं) को पकाया (परिपक्व किया) । वृत्र को मारने के लिए इन्द्रदेव ने मनुष्यों द्वारा निष्पन्न सोम के तीन पात्रों का एक साथ पान किया ॥७॥

त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने तीन सौ महिषों (प्राण-प्रवाहों ) को स्वीकार किया और सोम के तीन पात्रों का पान किया, तब आपने वृत्र को मारा । देवों ने कुशल कर्मकार की भाँति इन्द्रदेव का आवाहन किया ॥८॥

उशना यत्सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप और 'उशना' (कवि-दूरदर्शी) दोनों संघर्षक और वेगवान् अश्वों के द्वारा घर गए, तब आपने शत्रुओं को मारा तथा कुत्स और देवों के साथ रथ पर आरूढ़ हुए। हे इन्द्रदेव ! आपने 'शुष्ण' असुर का भी हनन किया ॥९॥

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सूर्य के चक्रों में एक चक्र को पृथक् कर दिया और अन्य चक्र 'कुत्स' को प्रतिष्ठा देने के लिए तैयार किया। आप नाकरहित (स्वर्गच्युत) और उच्च शब्द करने वाले दस्युओं को वज्र से मारकर संग्राम में विजयी हुए ॥१०॥

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।

आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! गौरिवीति के स्तोत्रों ने आपको प्रवर्द्धत किया, तो आपने विथि पुत्र जिश्व के लिए 'पिपु' (असुर) को मारा । तब ऋजिश्वा ने आपको मित्रता के पूरक रूप में आपके निमित्त पुरोडाश पकाकर निवेदित किया और उनके द्वारा निवेदित सोम का भी आपने पान किया ॥११॥

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२॥

सौमों का अभिषवण करने वाले 'नवग्वा' और 'दशग्वा' ने इन्द्रदेव के अभिमुख अर्चनीय स्तोत्रों से स्तुतियाँ कीं। तब प्रशंसित इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुद्गणों द्वारा असुरों को मारकर छिपे हुए गौ-समूहों को मुक्त किया ॥१२॥

कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपने जो पराक्रमयुक्त कार्य प्रकट किया है, उन्हें जानने वाले हम आपकी परिचर्या किस प्रकार करें ? हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपने जो नये पराक्रम के कार्य सम्पादित किये

हैं, आपके उन पराक्रमों का हम अपने यज्ञों में सम्यक् वर्णन करेंगे ॥१३॥

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥१४॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं में अटल (अड़िग) संघर्षक हैं । आपने जन्म लेकर अपने बल से सम्पूर्ण भुवनों को बनायो । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने शत्रुओं को मारते हुए जिन पराक्रमों को किया है, आपके उस बल का निवारण करने वाला अन्य कोई नहीं है ॥१४॥

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५॥

हे अतीव बलशाली इन्द्रदेव ! हमने आपके निमित्त जिन नवीन स्तोत्रों की रचना की हैं, हम लोगों द्वारा निवेदित उन स्तोत्रों को आप ग्रहण करें । हम स्तोता उत्तम कर्म करने वाले, बुद्धिमान् और धनाभिलाषी हैं । हम उत्तम वस्त्रों और उत्तम रथ के निर्माण की तरह इन स्तोत्रों का निर्माण करते हैं ॥१५॥

# सूक्त ३०

ऋषिः वभुरात्रेय
देवता – इन्द्र, ऋणचयेन्द्रौ । छंद –त्रिष्टुप,

क्व स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१॥

असंख्यों द्वारा आवाहित किये जाने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव, धन से युक्त होकर संरक्षण-साधनों के साथ, अभिघुत सोम की इच्छा से यजमान के घर जाते हैं। वे पराक्रमी इन्द्रदेव कहाँ हैं? अपने दोनों अश्वों से सुसज्जित, सुखदायक रथ पर जाने वाले इन्द्रदेव को किसने देखा है ? ॥१॥

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२॥

हमने इन्द्रदेव के गुह्य और उग्र स्थान को देखा है । दर्शन की अभिलाषा से हम इन्द्रदेव के आश्रय स्थल में गये । हमने अन्यों से भी

पूछा, तब उन्होंने बताया कि उत्तम ज्ञान के अभिलाषी मनुष्य ही इन्द्रदेव को प्राप्त करते हैं ॥२॥

प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिन कार्यों को किया है, उनका हम सोम-सवन वाले स्थानों में वर्णन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपने हमारे निमित्त जिन कर्मों को प्रयुक्त किया है, उन्हें सभी जान लें । जानने वाले साधक अनजान लोगों को सुनायें। सब सेनाओं से युक्त ये ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव अश्वों पर आरूढ़ होकर उन जानने वालों और सुनने वालों की ओर गमन करें ॥३॥

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! उत्पन्न होते ही आपने शत्रु-विजयी होने के लिए मन को संकल्प से स्थिर किया । आपने युद्ध में अकेले ही अनेक शत्रुओं को नष्ट किया तथा दृढ़ पर्वत के आवरण को विदीर्ण कर बन्द दुधारू गौओं के समूह को विमुक्त किया ॥४॥

परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।

अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप सबमें प्रमुख और श्रेष्ठतम हैं । आप जब अत्यन्त दूर तक श्रवणीय नाम को धारण करे प्रकट हुए, तो सभी देवगण भयभीत हुए । इन्द्रदेव ने वृत्र द्वारा प्रभुत्व स्थापित किये हुए जल को जीत लिया ॥५॥

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! उत्तम सेवा करने वाले ये मरुद्गण स्तोत्रों से आपकी ही अर्चना करते हैं और सोम निवेदित करते हैं । इन्द्रदेव ने जल को बन्द करने वाले और देवों को पीड़ित करने वाले मायावी 'अहि' को नष्ट कर दिया ॥६॥

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप सबके द्वारा प्रशंसित किये जाते हैं। आपने जन्म लेते ही 'दान' असुर को मारा और अन्यान्य हिंसक शत्रुओं को भी मारा । हे इन्द्रदेव ! इस युद्ध में मनु के लिए मार्ग बनाने

की इच्छा से युक्त होकर 'नमुचि' नामक दस्यु के सिर को आप काट डालें ॥७॥

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आपने गर्जनशील मेघ के समान गर्जना करने वाले दास नमुचि के सिर को टुकड़े-टुकड़े कर दिया, फिर हमें मित्र बनाया। उस समय मरुतों की सहायता से आपने आकाश-पृथिवी को चक्र की तरह परिभ्रमणशील बनाया ॥८॥

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९॥

दास 'नमुचि' ने ज्ञब स्त्रियों को युद्ध का साधन बनाया, तब इसकी यह निर्बल सेना मेरा क्या कर लेगी? यह सोचकर इन्द्रदेव ने उसकी दो प्रमुख स्त्रियों को बन्दी बना लिया और नमुचि से लड़ने के लिए अग्रसर हुए ॥९॥

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०॥

'नमुचि' असुर द्वारा बभ्रु ऋषि की अपक्ष गौएँ (किरणे) बछड़ों (प्राणियों) से विलग होकर इधर-उधर भटक रही थीं, तब अभिषुत सोम ने इन्द्रदेव को हर्षित किया और इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुतों के द्वारा गौओं को बछड़ों से युक्त किया ॥१०॥

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११॥

जब बभ्रु (भरण-पोषण करने वाले) के अभिषुत सोम ने इन्द्रदेव को प्रफुल्लित किया, तब बलवान् इन्द्रदेव ने संग्राम में घोर गर्जना की । शत्रु नगरों के विध्वंसक इन्द्रदेव ने सोम पान किया और बधु (ऋषि या अग्नि) को दुधारू गौएँ पुनः प्राप्त करायीं ॥११॥

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥

हे अग्निदेव ! ऋणञ्चय राजा के अधीनस्थ रुशमवासियों ने हमें चार सहस्र गौएँ देकर कल्याणकारी काम किया। मनुष्यों के नेतृत्वकर्ता श्रेष्ठ ऋणञ्चय (धनसंग्रह करने वालों) द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्यों को भी हमने ग्रहण किया ॥१२॥

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।

तीव्रा इन्द्रमममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३॥

हे अग्निदेव ! रुशमवासियों ने सहस्रों गौओं से युक्त और सुन्दर सुशोभित गृह हमें प्रदान किया है । रात्रि के अवसान काल (उष: कालो में हमने अभिषुत हुए तीक्ष्ण सोम को निवेदित कर इन्द्रदेव को हर्षित किया ॥१३॥

औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥

रुशमवासियों के राजा ऋणञ्चय के पास जाने पर अन्धकारयुक्त रात्रि जो उपस्थित थी, उसके बीत जाने पर बभ्रु ऋषि ने निरंतर गतिमान् अश्वों की तरह द्रुतगामिनी चार सहस्र गौओं को प्राप्त किया ॥१४॥

चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥

हे अग्निदेव ! हम मेधावी हैं। हमने रुशमवासियों से चार सहस्र गौ रूप पशुओं को प्राप्त किया और यज्ञ में पशुओं के दुग्ध दुहने के निमित्त अधिक तपाये हुए(अधिक शुद्ध) स्वर्णमय कलश को भी प्राप्त किया ॥१५॥

# सूक्त ३१

ऋषि: अवस्यु
देवता – इन्द्र, कुत्सो, उशना, इन्द्राकुत्सौ । छंद –त्रिष्टुप,

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव जिस रथ पर अधिष्ठित होते हैं, उसे वे अतिवेग से संचालित करते हैं। ग्वाला जिस प्रकार अपने पशुओं को प्रेरित करता है, उसी प्रकार आप अपनी सेना को प्रेरित करते हैं । युद्ध में अहिंसित रहते हुए आप शत्रुओं के धन की कामना करते हैं ॥१॥

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२॥

हे हरि नामक अश्व वाले इन्द्रदेव ! आप हमारे पास शीघ्र आएँ, हमें निराश न करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा निवेदित पदार्थों को स्वीकार करें । हे इन्द्रदेव ! आप से श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं हैं । आप भार्याहीनों को पत्नी प्रदान करते हैं ॥२॥

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३॥

जब सूर्यदेव के तेज से उषा का तेज फैला, तब इन्द्रदेव ने लोगों को सभी इन्द्रियाँ देकर सक्रिय किया ।पर्वत के आवरण में छिपी दुधारूगौओं को विमुक्त किया और सर्वत्र आच्छादित तमिस्रा को अपने तेजस से दूर किया ॥३॥

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

बहुतों द्वारा आवाहनीय हे इन्द्रदेव ! भुओं ने आपके रथ को अश्वों से योजित करने के योग्य बनाया। त्वष्टादेव ने आपके निमित्त तीक्ष्ण वज्र बनाया । मन्त्रयुक्त स्तोत्रों से यजन (पूजा) करने वालों ने आपको वृत्र-वध के निमित्त स्तोत्रों से प्रवर्द्धित किया ॥४॥

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥

हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! उन बलवान् मरुतों ने जब स्तोत्रों से आपकी स्तुति की; उस समय दृढ़ पाषाण सोम अभिषवण के लिए संयुक्त हुए

थे। आपके द्वारा प्रेरित होने पर अश्वहीन और रथहीन मरुतों ने पलायन करने वाले शत्रुओं को पराभूत किया ॥५॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपने अपने बलों से जिन कर्मों को सम्पादित किया है; उन नये और पुराने कर्मों का हमें वर्णन करते हैं। हे इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के लिए अद्भुत विविध जल (रसों) को धारण किया ॥६॥

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७॥

हे दर्शनीय और ज्ञानी इन्द्रदेव ! आपने वृत्र को मारकर जो अपने बल को इस लोक में प्रकाशित किया; वह आपका ही कर्म है। आपने 'शुष्ण' असुर की माया को जानकर उसे पकड़ा और युद्धस्थल में जाकर असुरों का संहार किया ॥७॥

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! विपत्तियों से पार करने वाले आपने 'यदु' और 'तुर्वश' के लिए वनस्पतियों को बढ़ाने वाले जले को प्रवाहित किया । आपने 'कुत्स' पर आक्रमण करने वाले 'शुष्ण' असुर से 'कुत्स' की रक्षा की; तब उशना कवि तथा देवों ने आपकी स्तुति की ॥८॥

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! हे कुत्स ! आप दोनों एक रथ पर आरूढ़ होकर द्रुतगामी अश्वों द्वारा यजमानों के समीप आएँ । आपने 'शुष्ण' असुर को उसके आश्रय स्थान जल से निकालकर मारा था। आपने सम्पन्न यजमानों के हृदयों से (पाप रूप) तमिस्रा को दूर किया था ॥९॥

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! इस क्रान्तदर्शी 'अवस्यु' ने वायु के समान वेगवान् और रथ में उत्तम प्रकार से योजित होने वाले अश्वों को प्राप्त किया । हे इन्द्रदेव ! आपके सब मित्ररूप मरुतों ने स्तोत्रों से आपके बल को प्रवर्धित किया ॥१०॥

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११॥

पूर्व में जब 'एतश' का सूर्य के साथ संग्राम हुआ था, तब इन्द्रदेव ने सूर्यदेव के अंति वेगवान् रथ को भी गतिहीन कर दिया था। तत्पश्चात् इन्द्रदेव ने सूर्य के रथ के एक चक्र का हरण कर उसी से शत्रुओं का संहार किया था-ऐसे वे इन्द्रदेव हमारे स्तोत्रों से वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमारे यज्ञ का सेवन करें ॥११॥

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२॥

हे यजमानो ! आप लोगों को देखने के लिए और मित्ररूप आप यजमानों द्वारा अभिषुत सोम की इच्छा करते हुए इन्द्रदेव यहाँ आये हैं। अध्वर्युगण शब्द करते हुए सोम अभिषवण के पाषाण को तेजी से चलाते हैं, अनन्तर अभिषुत सोम वेदी पर लाया जाता है ॥१२॥

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥

हे अविनाशी इन्द्रदेव ! हम मनुष्य आपके आश्रय में सुखी हैं और सुखी ही रहें । हम कभी अनिष्टों से युक्त न हों । आप हम यजमानों की सेवा स्वीकार करें । मनुष्यों के बीच में हम आपके हैं, आप हममें बल स्थापित करें ॥१३॥

# सूक्त ३२

ऋषिः गातुरात्रेयः
देवता – इन्द्र, । छंद –त्रिष्टुप,

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१॥

हे इन्द्रदेव !आपने बादलों को भेदकर जल धाराओं को प्रकट करने के लिए बाधाओं को दूर किया और ऊँची तरंगों वाले समुद्र को अधिक जल प्रदान करके प्रसन्न किया । आपने ही राक्षसों का संहार किया ॥१॥

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप वर्षाकाल में अवरुद्ध मेघों के बन्धनों को तोड़कर मेघों के बल को नष्ट करने वाले हैं । हे उग्र इन्द्रदेव ! आपने सोये हुए बलवान् वृत्र को मारकर अपने बल को विख्यात किया ॥२॥

त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३॥

एक मात्र इन्द्रदेव ही अतुलनीय हैं। उन्होंने वृत्र के पृथ्वी पर चलने (प्रयोग किये जाने) वाले अस्त्रों को नष्ट कर दिया। उससे (वृत्र के प्रभाव से) एक अन्य बलशाली (असुर) प्रकट हुआ ॥३॥

त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥४॥

वर्षणशील मेघ पर प्रहार कर गिराने वाले और वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव ने उस 'शुष्ण' असुर को वज्र से मार गिराया, जो वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न होकर तम से आच्छादित करता था। मेघों को अवरुद्ध कर गिरने (बरसने) नहीं देता था और प्राणियों के अन्नों को स्वयं खाकर हर्षित होता था ॥४॥

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! जिसके मर्म को कोई नहीं जान सकता, उस वृत्र के गुह्य मर्म को आपने अपने कर्मों (पुरुषार्थ) से जान लिया । उत्तम बल

सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! सोमपान से प्रमुदित होकर आपने युद्धाभिलाषी वृत्र को तमिस्रा पूर्ण स्थान में भी खोज लिया ॥५॥

त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥

वृत्र सुखकारी जल में सोते हुए, गहन तमिस्रा में पुष्ट होता था। अभिषुत सोमपान से प्रमुदित होकर अतीव बलशाली इन्द्रदेव ने वज्र को ऊँचा उठाकर उस वृत्र को मारा ॥६॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७॥

जब इन्द्रदेव ने उस भीमकाय दानव को मारने के लिए अजेय वज्र को उठाया और जब वृत्र पर उसके द्वारा प्रचण्ड प्रहार किया; तब उसे सब प्राणियों की अपेक्षा निम्नतम स्थिति में पहुँचा दिया ॥७॥

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥८॥

उग्रवीर इन्द्रदेव ने, विकराल मेघों को घेरकर सोने वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले और सबको आच्छादित करने वाले उसे असुर वृत्र

को पकड़ लिया। संग्राम में इन्द्रदेव ने उस पादरहित, परिमाणरहित, दुष्ट वचन बोलने वाले वृत्र को क्षत-विक्षत किया ॥८॥

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९॥

इन्द्रदेव के शोषक बल का निवारण कौन कर सकता है ? अप्रतिद्वन्द्वी इन्द्रदेव अकेले ही शत्रुओं के धन का हरण कर लेते हैं। दीप्तिमती द्यावा-पृथिवीं भी वेगवान् इन्द्रदेव के बल से भयभीत होकर चलती हैं ॥९॥

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०॥

यह दीप्तिमान् , स्वयं धारणशील आकाश भी इन इन्द्रदेव के लिए नम्र होकर रहता है। जिस प्रकार कामना करने वाली स्त्रियाँ पति को आत्मसमर्पण कर देती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी इन्द्रदेव के आगे आत्मसमर्पण कर देती है । जब ये इन्द्रदेव अपने सम्पूर्ण बल को प्रजाओं के मध्य स्थापित करते हैं, तब प्रजाएँ इन बलवान् इन्द्रदेव को नमन करती हैं ॥१०॥

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।

तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! हम मनुष्यों से सुनते हैं कि आप सज्जनों के पालक, पंचजनों के हितैषी और अतिशय यशस्वी हैं । एक मात्र आप ही इस वरीयता के साथ उत्पन्न हुए हैं। दिन-रात स्तुतियों के साथ वि देने वाली और कामना करने वाली हमारी सन्ताने अतिशय स्तुत्य इन्द्रदेव को प्राप्त करें ॥११॥

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! हम सुनते हैं कि आप समय-समय पर प्राणियों के प्रेरक बनते हैं। आप ज्ञानियों को धनादि दान करने वाले हैं । हे इन्द्रदेव ! जो स्तोतागण आपमें अपनी कामनाओं को स्थापित करते हैं, आपके वे ज्ञानी मित्र आपसे क्या पाते हैं ? ॥१२॥

# सूक्त ३३

ऋषि: प्राजापत्य संवरण
देवता – इन्द्र, । छंद –त्रिष्टुप,

महि महे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१॥

ये इन्द्रदेव युद्धों में वीर पुरुषों से युक्त होकर अतिशय प्रकृष्ट पराक्रमों वाले जाने जाते हैं और अपनी उत्तम बुद्धि से सब मनुष्यों पर प्रभुत्व रखते और स्तुत्य होते हैं। हम निर्बल स्तोतागण मनुष्यों को बल सम्पन्न बनाने के लिए बलशाली इन्द्रदेव की प्रचुर स्तुतियाँ करते हैं ॥१॥

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२॥

हे इष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आप हमारी स्तुतियों पर ध्यान देकर प्रीतिपूर्वक रथ में योजित अश्वों की लगाम हाथ में धारण करें । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं को भी उसी प्रकार वशीभूत करें ॥२॥

न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥३॥

हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! जो मनुष्य आपके भक्तों से भिन्न हैं और आपके साथ नहीं रहते हैं, जो ब्रह्म कर्मों से रहित हैं, वह आपके भक्त नहीं हो सकते । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में दीप्तिमान् और उत्तम अश्वों से युक्त उस रथ से पधारें, जिसे आप स्वयं नियंत्रित करते हैं ॥३॥

पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अनेक वर्णनीय स्तोत्र हैं। आपने जल अवरोधकों को नष्ट कर उपजाऊ भूमि में जल वर्षण के लिए मार्ग बनाया है और हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपने युद्ध में 'नमुचि' दास के नाम को भी विनष्ट कर दिया ॥४॥

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।

आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! हम सब ऋत्विज् और यजमान आपके हैं । यज्ञ द्वारा आपके बल को प्रवर्धित करते हैं और आहुतियाँ प्रदान करने आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी शक्ति सर्वत्र संचरित है। युद्धों (जीवन समर) में भगरूप सेवक हमें आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ॥५॥

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥

आपके सम्पूर्ण बल अत्यन्त पूजनीय हैं। आप मनुष्यों में व्याप्त होकर भी अविनाशी (अमरणशील) हैं। आप अपनी सामर्थ्य से जगत् के आश्रयदाता हैं। आप हमें उज्ज्वल वर्ण के धनों. को प्रदान करें। आप अत्यन्त धन-सम्पन्न और श्रेष्ठ दाता हैं । आपके दान की हम सम्यक् स्तुति करते हैं ॥६॥

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हम यजमान आपकी स्तुति करते हैं और आपका यजन करते हैं। अपनी रक्षण-सामर्थ्यों से आप हमारी रक्षा करें ।

संग्रामों में आप आवरण (कवच) रूप में हमारी रक्षा करें । हमारे द्वारा भली प्रकार अभिषुत मधुर सोमरस को प्राप्त कर आप तृप्त हों ॥७॥

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८॥

गिरिक्षित गोत्र में उत्पन्न 'पुरुकुत्स' के विद्वान् पुत्र 'त्रसदस्यु' स्वर्ण सम्पदाओं से युक्त हैं । उनके द्वारा प्रदत्त दस श्वेत वर्ण वाले अश्व हमें वहन करें । हम भी श्रेष्ठ कर्तव्यों से युक्त रहें ॥८॥

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९॥

'मरुताव' के पुत्र 'विदथ' के यज्ञ में हमें उन्होंने रक्तवर्ण वाले द्रुतगामी अश्व प्रदान किये और सहस्रों प्रकार के धन देकर हमारे श्रेष्ठ शरीर को अलंकारों से युक्त किया ॥९॥

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥

‘लक्ष्मण’ के पुत्र ‘ध्वन्य’ ने जो हमें उत्तम दीप्तियुक्त और पराक्रमी अश्व प्रदान किये, वे हमने स्वीकार किये । जैसे गौएँ चरने के स्थान को जाती हैं, वैसे उनके द्वारा प्रदत्त प्रभूत (विपुल) धन ‘सम्वरण’ अषि के स्थान में गया है ॥१०॥

# सूक्त ३४

ऋषि: प्राजापत्य संवरण
देवता – इन्द्र, । छंद –जगती, ९ त्रिष्टुप,

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१॥

जिनके शत्रु उत्पन्न ही नहीं हुए हैं, ऐसे दर्शनीय इन्द्रदेव को क्षीण न होने वाले, सुखप्रद और अपरिमित हविष्यान्न प्राप्त होते हैं । वे इन्द्रदेव बहुतों द्वारा स्तुत एवं स्तोत्रों को धारण करने वाले हैं । हे ऋत्विजो ! उन इन्द्रदेव के निमित्त लोग पुरोडाश पकायें और श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म सम्पादित करें ॥१॥

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२॥

इन्द्रदेव ने सोमरस द्वारा अपने पेट को भर लिया और मधुर हविष्यान्न द्वारा हर्ष से युक्त हुए, तब 'मृग' नामक असुर को मारने की इच्छा

करते हुए महावधी इन्द्रदेव ने सहस्त्रधार वाले वज्र को हाथ में उठाया ॥२॥

यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३॥

जो यजमान इन्द्रदेव के लिए दिन और रात सोम अभिषवण करते हैं, वे दीप्तिमान् होते हैं । जो यज्ञादि कार्य का आडंबर कर सन्तति की कामना करते हैं; जो अपने शरीर को सजाने वाले, आडम्बर करने वाले और बुरे आचरण करने वालों के मित्र होते हैं, ऐसों को इन्द्रदेव छोड़ देते हैं ॥३॥

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥४॥

जो मनुष्य यजमान के पिता-माता और भ्राता का वध करता है, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव उस दुष्ट के पास नहीं जाते । उसके द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को भी स्वीकार नहीं करते । वे धनों के अधीश्वर और सर्व-नियामक इन्द्रदेव पाप से दूर रहते हैं ॥४॥

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५॥

युद्ध में इन्द्रदेव पाँच या दस मित्रों की सहायता की कामना नहीं करते । जो सोम सवन नहीं करता और बन्धुओं का पोषण नहीं करता, इन्द्रदेव उनकी संगति नहीं करते । शत्रुओं को कॅपाने वाले इन्द्रदेव अयाज्ञिक को जीतकर उसे मारते हैं और याज्ञिकों को गौओं से युक्त गृह प्रदान करते हैं ॥५॥

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६॥

संग्राम में शत्रु-सामर्थ्य को क्षीण करने वाले इन्द्रदेव रथचक्र को वेग से चलाने वाले हैं । वे सोमयाग न करने वालों से दूर रहते और सोमयाग करने वालों को प्रवर्धित करते हैं । सम्पूर्ण विश्व के नियामक, शत्रुओं के लिए भयंकर वे श्रेष्ठ इन्द्रदेव 'नमुचि' दास को अपने वश में कर लेते हैं ॥६॥

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥

इन्द्रदेव कृपण बनिये के धन का हरण कर लेते हैं और उस धन को विदाता यजमान को देकर उसे शोभावान् बनाते हैं । जो मनुष्य

इन्द्रदेव के बल को कुपित करता है, इन्द्रदेव उसे विपदाओं के दुर्ग में कैद कर देते हैं ॥७॥

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८॥

उत्तम धन वाले, अत्यन्त बलशाली दो मनुष्य जब शुभ गौओं के लिए परस्पर संघर्ष करते हैं, तो ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव उनमें से याज्ञिक की ही सहायता करते हैं। अपने बलों से शत्रुओं को कैंपाने वाले इन्द्रदेव इस याज्ञिक को गौओं का समूह दान करते हैं ॥८॥

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥

हे तेजस्वी गुण-सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम सहस्रों प्रकार के धन-दाता, 'अग्निवेशि' के पुत्र 'शत्रि' ऋषि की स्तुति करते हैं; जो ध्वज के सदृश शिरोमणि रूप और श्रेष्ठ उपमा योग्य हैं। संयत जल-प्रवाह उन्हें सम्यक् रूप से तृप्त करें । आपको धन बलयुक्त और तेजोयुक्त हो ॥९॥

# सूक्त ३५

ऋषि: प्रभुवसुरागिंरस:
देवता – इन्द्र, । छंद – अनुष्टुप, ८ पंक्ति,

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आपका जो विशिष्ट प्रभायुक्त कर्म हैं, उसे हमारे संरक्षण के लिए प्रयुक्त करें। आपका कर्म शत्रुओं को पराभूत करने वाला अति शुद्ध और संग्राम में कठिनता से पार पाये जाने वाला है ॥१॥

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपके जो चार वर्षों में रक्षण साधन हैं। तीनों लोकों में जो रक्षण-साधन स्थित हैं अथवा पंचजनों के निमित्त जो रक्षण साधन हैं, उन सभी रक्षण साधनों से हमें अभिपूरित करें ॥२॥

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप इष्ट-फलों के प्रदाता, वृष्टिकर्ता और शत्रुओं के शीघ्र संहारक हैं । आपके सम्पूर्ण रक्षण साधनों की हम कामना करते हैं। आप सर्वत्र विद्यमान एवं सहायक मरुतों के साथ मिलकर हमारे लिए श्रेष्ठ दाता सिद्ध हों ॥३॥

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप इष्ट-प्रदायक हैं। यजमानों को धन-ऐश्वर्य देने के लिए ही आप उत्पन्न हुए हैं। आपका बल इष्टवर्धक हैं । आपका मन संघर्ष शक्ति से युक्त हैं । आपका बल शत्रुओं को वश में करने वाला हैं । आपका पौरुष शत्रु-संहारक है ॥४॥

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सैकड़ों यज्ञादि कर्मों के सम्पादक हैं । आपका रथ सर्वत्र अबाधगति से जाता है । जो मनुष्य आपके प्रति शत्रुवत् व्यवहार करते हैं, आप उनके विरुद्ध चलते हैं ॥५॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! यज्ञों में कुश के आसन बिछाकर अभिवादन करने वाले मनुष्य, जीवन-संग्राम में आपका आवाहन करते हैं। आप उग्र, वीर और सम्पूर्ण प्रजाओं में चिर पुरातन हैं ॥६॥

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रथ की रक्षा करें । यह रथ युद्धों में ऐश्वर्य की कामना करने वाला है। यह अनुचरों के साथ अग्रगमन करने वाला और दुस्तर है ॥७॥

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएँ । अपनी प्रकृष्ट बुद्धि से हमारे रथ की रक्षा करें । आप अत्यन्त बलशाली हैं । आपके निमित्त हम ग्रहणीय एवं दीप्तिमान् अन्नों को हवि द्वारा स्थापित करते हैं और दिव्य स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥८॥

# सूक्त ३६

ऋषिः प्रभुवसुरागिंरसः
देवता – इन्द्र, । छंद – त्रिष्टुप, ३ जगती

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१॥

जो धनों को देना जानते हैं, जो धनों के अनुपम दाता हैं; ऐसे इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आएँ। जैसे धनुर्धारी वीर शिकार की कामना करता है, वैसे ही तृषित इन्द्रदेव सोम की कामना करते हुए दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करे ॥१॥

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन्गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

हे अश्वयुक्त शूर इन्द्रदेव ! जैसे सोम पर्वत के पृष्ठ भाग पर रहता है, वैसे यह सोम आपके सुन्दर होंठ पर चढ़े। बहुतों के द्वारा आवाहन किए जाने वाले दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! जैसे अश्व तृण खाकर तृप्त

होता है, वैसे आप हमारी स्तुतियों को पाकर तृप्त हों, जिससे हम भी प्रमुदित हों ॥२॥

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥३॥

बहुतों के द्वारा स्तुत, वज्रधारण करने वाले है इन्द्रदेव ! जैसे गोल चक्र घूमते हुए काँपता है, उसी प्रकार हमारा मन बुद्धिहीनता के कारण भय से काँपता है । हे सर्वदा वर्धमान इन्द्रदेव ! आप असंख्यों धनों के अधीश्वर और अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हैं । हम स्तोतागण बारम्बार आपका स्तवन करते हैं । आप धन से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर हमारे पास आएँ ॥३॥

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४॥

जैसे सोम अभिषव करने वाला पाषाण शब्द करता है, वैसे हम स्तोता स्तुति करते हुए शब्द करते हैं। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप विपुल धन-सम्पन्न हैं। आप बाँयें और दायें दोनों हाथों से धन दान करने वाले हैं, हे दो अश्वों वाले इन्द्रदेव ! आप हमारी कामनाओं को विफल न करें ॥४॥

वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! बल-संयुक्त आकाश आपके बलों को संवर्धित करे । बल-सम्पन्न आप अति बलवान् अश्वों द्वारा वहन किये जाते हैं । उत्तम शिरस्त्राण और वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप अतीव बल-सम्पन्न कर्म करने वाले हैं । अत्यन्त बलशाली रथ पर अधिष्ठित होने वाले आप संग्राम में भली-भाँति हमारी रक्षा करें ॥५॥

यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६॥

इन्द्रदेव के सहायक हे मरुतो ! अन्नवान् श्रुतरथ राजा ने समान गति वाले एवं रोहित वर्ण वाले दो अश्व और तीन सौ गौएँ हमें प्रदान की । ऐसे तरुण श्रुतरथ के लिए उनकी समस्त प्रज्ञाएँ सेवा भाव से युक्त होकर नमन करती हैं ॥६॥

# सूक्त ३७

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – इन्द्र, । छंद – त्रिष्टुप

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१॥

उत्तम रूप से आवाहित और घृत आहुतियों से दीप्तिमान् अग्नि की ज्वालाएँ सूर्यरश्मियों से सुसंगत होकर चलती हैं । उस समय जो यजमान "इन्द्रदेव के लिए सोम-सवन करें"-ऐसा कहता है, उसके निमित्त उषा अत्यन्त सुखकारी होकर प्रकाशित होती है ॥१॥

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२॥

अध्वर्यु अग्नि को प्रज्वलित करके, आसन विस्तीर्ण कर यजन कार्य में प्रवृत्त होता है । वह सोम अभिषवण के पाषाण से युक्त होकर

स्तुति करते हुए पाषाण से तीव्र शब्द करता है। वह अध्वर्यु सोमयुक्त हविष्यान्न लेकर नदी तट पर यज्ञन कार्य सम्पन्न करता है ॥२॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ कामनाएँ करती हुई पत्नी यज्ञ में पति की अनुगामिनी होती है, उसी प्रकार इन्द्रदेव भी अपनी अनुगामिनी रानी को यज्ञ में वहन करते हैं। प्रभूत ऐश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव के रथ की कीर्ति चतुर्दिक फैलकर गुंजरित हो। वे इन्द्रदेव सहस्रों विपुल धनों को चारों ओर से हमारे पास लायें ॥३॥

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

जिसके राज्य में इन्द्रदेव सर्वदा गो-दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करते हैं, वे राजा कभी व्यर्थित नहीं होते। अपने सत्य सेवकों के साथ सर्वत्र विचरते हैं। अपने शत्रुओं को मारते हैं। प्रजाओं को सुरक्षित रखते हैं। वे अपने सौभाग्य और नाम-यश को पुष्ट करते हैं ॥४॥

पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५॥

जो इन्द्रदेव के निमित्त सोम अभिषवण कर उन्हें शुद्ध सोम प्रदान करता है। वह अपने बन्धुओं और सन्तानों का सम्यक् पोषण करता हुआ प्राप्त धन की रक्षा करने और अप्राप्त धन को प्राप्त करने में समर्थ होता है ।वह सभी जीवन-संग्रामों के उपस्थित होने पर विजयी होता है ।वह सूर्यदेव और अग्निदेव के लिए प्रिय होता है॥५॥

# सूक्त ३८

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – इन्द्र, । छंद – त्रिष्टुप

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१॥

सर्वज्ञ, श्रेष्ठदानी, सौ अश्वमेध (सैकड़ों यज्ञादि सत्कर्म करने वाले हैं इन्द्रदेव ! आप महिमाशाली धन प्रदान कर हमें भी ऐश्वर्य-सम्पन्न बनायें ॥१॥

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२॥

हे अत्यन्त बलशाली इन्द्रदेव ! आप स्वर्ण सदृश कान्ति से युक्त हैं । आप अत्यन्त यशस्वी अन्नों को धारण करने वाले हैं। वह आपका यश दुर्गमता से पार पाने (अनिवारणीय) योग्य है और दीर्घकाल तक अबाधित गति से फैलने वाला है ॥२॥

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अत्यन्त पूजनीय, सर्वत्र व्याप्त, प्रभूत बल-सम्पन्न तथा सहायकरूप मरुतों के साथ द्युलोक और पृथ्वीलोक में स्वेच्छा से विचरण करते हुए सब पर शासन करते हैं ॥३॥

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४॥

वृत्रनामक असुर का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आपके बल-सामर्थ्य का वर्णन करते हैं । आप हमें किसी भी बल-सम्पन्न शत्रु का धन लाकर देते हैं; क्योंकि आप हम सबको धनवान् बनाने के अभिलाषी हैं ॥४॥

नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५॥

सौ यज्ञ (सैकड़ों सत्कर्म करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम सब आपकी शरण में रहते हुए आपकी रक्षण-सामर्थ्यो द्वारा भली प्रकार सुरक्षित हों । हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हम सब भली प्रकार संरक्षित हों ॥५॥

# सूक्त ३९

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – इन्द्र, । छंद – अनुष्टुप, ५ पंक्ति

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥

अद्‌भुत वज्र को धारण करने वाले ऐश्वर्यशाली हे इन्द्रदेव ! हमारे पास आपके समर्पण योग्यं धन का अभाव है । अतएव मुक्त हस्त से हमें प्रचुर धन प्रदान करें ॥१॥

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र दयुक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस धन-सामर्थ्य को श्रेष्ठ और तेजस्वितायुक्त मानते हैं, वह धन हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें । हम उस धन को (लोक कल्याणार्थ) दान देने की स्थिति में भी रहें ॥२॥

यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृव्ळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने सब दिशाओं में स्तुत्य, प्रसिद्ध और व्यापक मन (आन्तरिक शक्ति-इच्छा शक्ति) से हमें स्थिर धन और सामर्थ्य प्रदान करें ॥३॥

मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥

इन्द्रदेव धनवानों में अनुपम शिरोमणि रूप हैं। वे मनुष्यों के अधीश्वर हैं। स्तोतागण प्राचीन स्तोत्रों से उनकी प्रशंसा के लिए सर्वदा उद्यत होकर सम्यक् सेवा करते हैं ॥४॥

अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥

इन्द्रदेव के लिए ही यह काव्य, स्तुति वचन और उक्थ वचन कहने योग्य हैं। उन स्तोत्रों को वहन करने वाले इन्द्रदेव के यज्ञ को अत्रि वंशज अंष स्तुतियों से संवर्धित करते हुए शुभ (उज्ज्वल) बनाते हैं ॥५॥

## सूक्त ४०

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – इन्द्र, ५ सूर्य, ६-९ अत्रि: । छंद – १-३ उष्णिक्, ५,९ अनुष्टुप, ४, ६-८ त्रिष्टुप

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥१॥

हे सोमपालक इन्द्रदेव ! पाषाण से कूटकर निष्पन्न इस सोमरस का आप पान करें । हे इन्द्रदेव ! आप इष्टवर्षक मरुतों के साथ वृत्र का हनन कर वृष्टि करने वाले हैं ॥१॥

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२॥

सोम-अभिषव में प्रयुक्त पाषाण (दोनों) वर्षणशील हैं । सोम से उत्पन्न हर्ष भी वर्षणशील है। यह अभिषुत किया हुआ सोम भी वर्षणशील

है । इष्टवर्षक, वृत्रहन्ता हे इन्द्रदेव ! आप वर्षणकारी मरुतों के साथ सोमरस का पान करें ॥२॥

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥३॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सोम के सिंचनकर्ता और वृष्टिकर्ता हैं। आपके संरक्षण साधनों से रक्षित होने के लिए हम आपका आवाहन करते हैं । इष्टवर्धक, वृत्रहन्ता है इन्द्रदेव ! आप वर्षणकारी मरुतों के साथ सोमपान करें ॥३॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४॥

इन्द्रदेव सोम धारणकर्ता, वज्रधारी, अभीष्टवर्षक, शत्रु-संहारक, शत्रुबलों के शोषक, सर्व अधीश्वर, वृत्रहन्ता और सोमपानकर्ता हैं । ऐसे इन्द्रदेव अपने अश्वों को रथ से युक्त करके हमारे समीप आये और माध्यन्दिन सवन में सोमपान कर हर्षित हों ॥४॥

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५॥

हे सूर्यदेव ! जब आपको स्वर्भानु (राहु ) ने तमिस्रा से आच्छादित कर दिया था, तब जैसे मनुष्य अन्धकार में अपने क्षेत्र को न जानकर भ्रमित हो जाता है, वैसे ही सभी लोक तमिस्रा में सम्मोहित हो गये ॥५॥

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आपने आकाश के नीचे विद्यमान स्वर्भानु की मायाओं को दूर कर दिया । तमिस्रा से आच्छादित सूर्य को अत्रि ऋषि ने अत्यन्त प्रकृष्ट मंत्रों द्वारा प्रकाशित किया ॥६॥

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७॥

(सूर्य का कथन) हे अग्ने ! आपके विद्यमान रहते यह द्रोहकारक, असुररूप, भयोत्पादक तमिस्रा में निगल न जाए। आप सत्यपालक और मित्र स्वरूप हैं । आप और तेजोमय वरुण दोनों मिलकर हमें संरक्षित करें ॥७॥

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥

ऋत्विज् अत्रि ऋषि ने पाषाणों को संयुक्त कर इन्द्रदेव के निमित्त सोम निष्पादित किया । स्तोत्रों से देवों का पूजन-अर्चन किया और वियों से उन्हें तृप्त किया । द्युलोक में सूर्यदेव को उपदेश देकर उनके चक्षु को स्थापित किया और स्वर्भानु की माया को दूर कर दिया ॥८॥

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥९॥

जिन सूर्यदेव को स्वर्भानु ने तमिस्रा से आच्छादित किया था, अत्रि वंशजों ने उनको मुक्त किया । अन्य कोई ऐसा करने में समर्थ नहीं हुए॥९॥

# सूक्त ४१

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – विश्वेदेवा, । छंद – त्रिष्टुप, १६-१७ अतिजगती, २० एकपदा विराट्

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१॥

हे मित्रावरुण देव ! कौन यजमान आपके यजन में समर्थ होता है ? हम आपका यजन करने वाले हैं । आप द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक के स्थान से हमारी रक्षा करें । हमें पशु, अन्न, धन आदि से युक्त करें ॥१॥

ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥२॥

हे मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु (वायु), इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुत् देवो ! आप सब देवगण हमारे शुभ्र स्तोत्रों को ग्रहण करें । आप सब

मंगलकारी रुद्रदेव के साथ मिलकर हमारे नमस्कार और अभिवादन युक्त स्तोत्रों को प्रीतियुक्त मन से स्वीकार करें ॥२॥

आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! वायु के सदृश वेगवान् अश्वों को रथ के मजबूत स्थान से आप भली प्रकार नियंत्रित करते हैं। आपका हम यज्ञ-सेवनार्थ आवाहन करते हैं । हे अंत्वजो ! आप दीप्तिमान् , अतिशय पूज्य और प्राण-प्रदाता रुद्रदेव के लिए उत्तम स्तोत्र और हविष्यान्न प्रस्तुत करें ॥३॥

प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥४॥

मेधावी जन जिनका आवाहन करते हैं, जो अत्यन्त दिव्य हैं, शत्रुविनाशक हैं, वे वायु, अग्नि, पूषा और भगदेव सम्मिलित होकर तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले सूर्यदेव के साथ मिलकर प्रीतिपूर्वक यज्ञ में आएँ । सभी देवगण यज्ञ में सम्पूर्ण हविरूप भोज्य पदार्थ ग्रहण करने के लिए युद्ध क्षेत्र में जाते हुए वेगवान् अश्व की भाँति अतिशीघ्र आगमन करें ॥४॥

प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५॥

हे मरुतो ! उत्तम अश्वों से युक्त ऐश्वर्य को हमारे निमित्त स्थापित करें । हम स्तोतो धन प्राप्ति के निमित्त और रक्षा के निमित्त उत्तम बुद्धि से आपका स्तवन करते हैं । हे मरुतो ! आपके जो वेगवान् अश्व हैं, उन अश्वों को पाकर 'औशिज' के होतागण सुखी हों ॥५॥

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरंधीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥

हे ऋत्विजो ! आप अत्यन्त द्युतिमान् , ज्ञानी, स्तुति योग्य वायुदेव को अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा रथ से संयुक्त करें । सर्वत्र गमन करने वाली , यज्ञ ग्रहण करने वाली रूपवती देवपत्नियाँ हमारी स्तुतियों को धारण कर यज्ञ में आगमन करें ॥६॥

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७॥

हे उषा और रात्रि देवियो ! आप दोनों अत्यन्त महान् हैं। हम वन्दनीय स्वर्ग के देवों के साथ आप दोनों को श्रेष्ठ हवि प्रदान करते हैं । आप

दोनों विदुषियों की तरह मनुष्य को सम्पूर्ण यज्ञादि कर्मों में प्रेरित करती हैं ॥७॥

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधी राय एषे ॥८॥

धन प्राप्ति के लिए हम मनुष्यों के पोषक वास्तोष्पति और त्वष्टा देव की उत्तम स्तोत्रों द्वारा अर्चना करते हैं। हव्यादि द्वारा उन्हें संतुष्ट करते हैं। धन देने वाली, आनन्द देने वाली धिषणा (वाणी) की स्तुति करते हैं । वनस्पतियों और ओषधियों की हम स्तुति करते हैं ॥८॥

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥

वीरों के सदृश जगत् के आश्रय-भूत मेघ, स्वेच्छा से सर्वत्र विहार करते हैं। वे विपुल दान के विषय में हमारे प्रति अनुकूल हों। वे हमारे द्वारा स्तुत्य, ज्ञानी, यजनीय और मनुष्यों के हितैषी हैं । वे हम लोगों की स्तुति से तुष्ट होकर अभीष्ट फल प्रदान कर हमें समृद्ध करें ॥९॥

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥

वृष्टि द्वारा भूमि को सींचने में समर्थ मेघ के गर्भ में स्थित जल के रक्षक अग्निदेव की हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं। तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले वे अग्निदेव जाते हुए अपनी सुखकर रश्मियों से हमें प्रताड़ित नहीं करते; किन्तु अपनी प्रदीप्त ज्वालाओं रूपी केशों से वनों को जलाकर भस्मीभूत कर देते हैं ॥१०॥

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११॥

हम महान् रुद्र-पुत्र मरुद्गणों की किस प्रकार स्तुति करें ? धन प्राप्त करने की आकांक्षा से ज्ञान सम्पन्न भगदेव का स्तवन कैसे करें ? जलदेव, ओषधियाँ, आकाशदेव, वन और वृक्ष रूप केश वाले पर्वतदेव हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ॥११॥

शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२॥

अन्तरिक्ष में सर्वत्र संचरित होने वाले, पृथ्वी के चतुर्दिक परिभ्रमणशील, बलों के अधिपति वायुदेव हमारी स्तुतियों का श्रवण करें । नगरों के सदृश उज्ज्वल, विशाल पर्वत के चतुर्दिक निस्सृत जल-धारा हमारे वचनों का श्रवण करे ॥१२॥

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

हे महान् मरुतो ! आप हमारे स्तोत्रों को जानें । हे दर्शनीय मरुतो ! हम लोग वरणीय हविष्यान्न को धारण करते हुए उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । आप क्षुब्ध होकर आने वाले शत्रुओं को आयुधों से मारकर हम लोगों के सम्मुख आयें ॥१३॥

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४॥

हम द्युलोक और पृथिवी लोक से जल की उत्तम स्तुतियाँ करके यज्ञ को भली प्रकार सम्पादित करते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह-नक्षत्र भी हमारी स्तुतियों को प्रवृद्ध करें । जल से परिपूर्ण नदियाँ जल से हमें संवर्द्धित करें ॥१४॥

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५॥

माता भूमि के प्रति प्रत्येक पद में हमारी स्तुतियाँ समाहित हैं। वे माता अपने रक्षण-साधनों और सामथ्र्यो से हमारी रक्षा करने वाली हों। वे हमारी स्तुतियों को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें और प्रसन्न होकर अनुकूल

हाथों से कल्याणकारी दान करने वाली हों । वे माता अपने दिव्य रसों से हमारा सिंचन करें ॥१५॥

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥

हम लोग उत्तम दानशील मरुतों का स्तवन किस प्रकार करें ? स्तोत्रों के उच्चारण द्वारा हम किस प्रकार मरुतों की सेवा करें ? हविष्यान्न देकर हम किस प्रकार मरुतों की सेवा करें ? हे अहिर्बुध्न्य देव ! हमें हिंसकजन अपने वश में न कर सकें। आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करने वाले हों ॥१६॥

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७॥

हे देवो ! यजमान, सन्तान और पशुओं की प्राप्ति के लिए हम आपकी उपासना करते हैं । हे देवो ! सभी मनुष्य आपकी उपासना करते हैं । निर्वातिदेव कल्याणकारी अन्न देकर हमारे शरीर का पोषण करें और हमारे बुढ़ापे को निगलकर दूर करें ॥१७॥

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥

हे प्रकाशवान् वसुओ ! हम उत्तम स्तुतियों द्वारा आपकी सुमतिरूप गौ से बल प्रदायक अन्न (पोषण) प्राप्त करें । वे दानवती, सुखदायिनी देवी हमें सुख देती हुई हमारे पास आएँ ॥१८॥

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९॥

गौ समूह की पोषणकत्र इला और उर्वशी, नदियों की गर्जना से संयुक्त होती हमारी स्तुतियों को सुनें । अत्यन्त दीप्तिमती उर्वशी हमारी स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारे यज्ञादि कर्म को सम्यक्रूप से आच्छादित कर हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥१९॥

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥

बल वृद्धि और सम्यक् पोषण के लिए देवगण हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें ॥२०॥

# सूक्त ४२

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – विश्वेदेवा, ११ रुद्र । छंद – त्रिष्टुप, १७ एकपदा विराट्

प्र शंतमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१॥

हमारी सुखकर स्तुतियाँ हव्यादि पदार्थों के साथ वरुण, मित्र, भग और अदिति को निश्चय ही प्राप्त हों । पंच प्राणों के आधार भूत, विचित्र वर्ण वाले, अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले, अबाधितगति वाले, प्राण-प्रदाता और सुखदाता वायुदेव हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१॥

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२॥

जैसे माता अपने पुत्र को प्रीतिपूर्वक धारण करती है, वैसे ही अदिति हमारे इन स्तोत्रों को हृदय से धारण करें ।देवों के प्रिय और हितकारी

हमारे जो स्तोत्र हैं, उन्हें हम मित्र और वरुणदेव के निमित्त अर्पित करते हैं ॥२॥

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥

हे ऋत्विज़ो ! आप लोग ज्ञानियों में अति श्रेष्ठ इन सवितादेव को प्रमुदित करें । इन देव को मधुर सोमरस और घृतादि द्वारा अभिषिक्त कर तृप्त करें । सवितादेव हमें शुद्ध, हितकारी, आह्लादक और जीवन को प्रकाशित करने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ मन, गौओं, अश्वों, ज्ञानीजनों तथा श्रेष्ठ, कल्याणकारी भावनाओं से युक्त करें । देवों का हित करने वाला जो ज्ञान हैं, उससे तथा यज्ञीय (सत्कर्मशील) देवों की सुमति से हमें जोड़े ॥४॥

देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरंधिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥

दीप्तिमान् भगदेव, सर्वप्रेरक सवितादेव, धन के स्वामी त्वष्टादेव, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव और धनों के विजेता ऋभुक्षा, वाज और पुरन्धि आदि समस्त अमरदेव शीघ्र ही हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर हम लोगों की रक्षा करें ॥५॥

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥६॥

हम यजमान मरुतों की सहायता पाने वाले इन्द्रदेव के महान् कार्यों का वर्णन करते हैं। ये इन्द्रदेव युद्ध से कभी पलायन नहीं करते। ये सर्वदा विजयशील और ज़रारहित है । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपके पराक्रम को न तो पूर्वकाल में किसी पुरुष ने पाया है, न आगे कोई प्राप्त करने वाला है, न ही किसी नवीन ने भी आपके पराक्रम को प्राप्त किया है ॥६॥

उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७॥

हे ऋत्विजो ! आप सर्वश्रेष्ठ, रत्न धारणकर्ता और धनों के प्रदाता बृहस्पतिदेव की स्तुति करें । वे हवि प्रदाताओं को प्रभूत धनों से युक्त करने के लिए आगमन करते हैं। वे प्रशंसा करने वालों और स्तुति करने वालों को अतिशय सुख प्रदान करते हैं ॥७॥

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८॥

हे बृहस्पतिदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर हम मनुष्य हिंसा से मुक्त, ऐश्वर्यवान् और उत्तम वीर पुत्रों से युक्त होते हैं । आपके अनुग्रह से जो मनुष्य उत्तम अश्वों, गौओं और वस्त्रों का दान करने वाला होता है, उनमें सौभाग्यशाली ऐश्वर्य स्थापित होता है ॥८॥

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो धनवान् स्तुति करने वालों को धन दान न करके उसका स्वयं ही उपभोग करता है, ऐसे मनुष्यों के धन को नष्ट हो जाने वाला करें । जो व्रत धारण नहीं करता और मन्त्र से द्वेष करता है, अमर्यादित सन्तान उत्पत्ति द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, ऐसे लोगों को आप सूर्यदेव से दूर करें ॥९॥

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥१०॥

हे मरुतो ! जो मनुष्य यज्ञ में राक्षसी वृत्तियों से युक्त होता है, जो आपके लिए स्तुति करने वाले की निन्दा करता है; जो अन्न, पशु आदि

कामनाओं की पूर्ति के लिए तुच्छता को अपनाता है, ऐसे मनुष्यों को आप चक्रविहीन रथ द्वारा अन्धकूप में निमग्न करें ॥१०॥

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥

हे ऋत्विज् ! आप रुद्रदेव की सम्यक् स्तुतियाँ करें, जो उत्तम बाण और धनुष से युक्त हैं, जो सम्पूर्ण ओषधियों द्वारा रोग निवारक हैं, उन रुद्रदेव का यजन करें । महान् मंगलकारी जीवन के लिए दीप्तिमान् और प्राणप्रदाता रुद्रदेव की नमनपूर्वक सेवा करें ॥११॥

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥

उदार मन वाले, निर्माण कार्य में कुशल हाथ वाले ऋभुदेव, विभुओं द्वारा निर्मित मार्ग वाली सरस्वती, वर्षणशील इन्द्रदेव की पत्नी रूप नदियाँ, तेजोयुक्त रात्रि आदि समस्त देवशक्तियाँ साधकों की मनोकामना पूर्ण करने वाली हैं। आप सब हमें धन प्रदान करें ॥१२॥

प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

महान् और उत्तम रक्षक अनेक रूपों में स्तुत्य इन्द्रदेव को हम नवीन रचनाएँ (स्तुतियाँ) बुद्धिपूर्वक समर्पित करते हैं। वर्षणकर्ता इन्द्रदेव ने कन्या रूपिणी पृथ्वी के हितार्थ नदियों में जल उत्पन्न कर उन्हें प्रवहमान बनाया ॥१३॥

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥

हे स्तोताओ ! आपकी उत्तम स्तुतियाँ उन गर्जनकारी, शब्दकारी, जल के स्वामी मेघों को निश्चय ही प्राप्त हों । वे मेघ जल से अभिपूरित हैं, वर्षणशील हैं और विद्युत् आलोक से सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवीं को आलोकित करते हुए गमन करते हैं ॥१४॥

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥

हमारे ये स्तोत्र रुद्रदेव के पुत्र रूप तरुण मरुतों को प्राप्त हों । कल्याणप्रद धन प्राप्ति की इच्छा हमें निरन्तर प्रेरित करती है । बिन्दुदार चिह्नित अश्वों वाले मरुद्गण, जो यज्ञ की ओर गमन करते हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं ॥१५॥

प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतींरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥

धन-प्राप्ति की अभिलाषा से हमारे द्वारा निवेदित ये स्तोत्र पृथ्वी, अन्तरिक्ष, वनस्पति और ओषधियों को प्राप्त हों । हमारे यज्ञ में सम्पूर्ण दीप्तिमान् देवों का उत्तम आवाहन हो।माता पृथ्वी हमें दुर्मति में स्थापित न करें ॥१६॥

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७॥

हे देवो ! हम सब आपके अनुग्रह से निर्विघ्न होकर अतिशय सुख में निमग्न हों ॥१७॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥

हम अश्विनीकुमारों के मंगलकारी, सुखकारी अनुग्रहों और उन रक्षण साधनों से संयुक्त हों, जो नूतन हों । हे अमर अश्विनीकुमारो ! आप हमें उत्तम ऐश्वर्य, वीर पुत्रों और सम्पूर्ण सौभाग्यों को प्रदान करें ॥१८॥

# *सूक्त ४३*

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – विश्वेदेवा । छंद – त्रिष्टुप, १६ एकपदा विराट्

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥

द्रुत वेग से प्रवाहित होने वाली, (जल से परिपूर्ण) नदियाँ अनुकूल होकर हमारे निकट आगमन करें । ज्ञान सम्पन्न स्तोतागण धन प्राप्ति की कामना से सुखदायिनी सप्त महानदियों का आवाहन करते हैं ॥१॥

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥

हम अन्न प्राप्ति के लिए उत्तम स्तुतियों और नमन-अभिवादन द्वारा अहिंसक आकाश और पृथिवी का आवाहन करते हैं। वे मधुर वचन

वाले, कुशल हाथों वाले और यशस्वी पिता रूप आकाश और माता पृथिवी प्रत्येक युद्ध में हमारी रक्षा करें ॥२॥

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३॥

हे अध्वर्युगण ! आप मधुर सोमरस का अभिषव करते हुए सुन्दर और दीप्तिमान् रस सर्वप्रथम वायुदेव को अर्पित करें । हे वायुदेव ! आप होता रूप में हमारे द्वारा प्रदत्त सोमरस का सर्वप्रथम पान करें । हम आपको हर्षित करने के लिए यह मधुर सोमरस निवेदित करते हैं ॥३॥

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चददद्दुहे शुक्रमंशुः ॥४॥

ऋत्विजों की दसों अँगुलियाँ और दोनों भुजाएँ पाषाण से युक्त होकर सोमरस-अभिषव में प्रयुक्त होती हैं। कुशल हाथों वाले ऋत्विज् अत्यन्त हर्षयुक्त मन से पर्वत पर उत्पन्न सोम वल्ली से रसों का दोहन करते हैं, जिससे दीप्तिमान् सोमरस की धारा बहती है ॥४॥

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी परिचर्या के लिए, पराक्रमयुक्त कार्य के लिए, बल के लिए और महान् हर्ष के लिए हम सोमाभिषव करते हैं। है इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा आवाहन किये जाने पर आप उत्तम धुरी वाले रथ से योजित प्रिय अश्वों के साथ हमारे यज्ञ में आएँ ॥५॥

आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥६॥

हे अग्निदेव ! हमारे द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित होकर आप सर्वत्र व्याप्त, यज्ञ को जानने वाली महान् तेजस्विनी 'ग्ना' देवी को देवों द्वारा गन्तव्य मार्ग से हमारे पास लाएँ। वह देवी हमारे द्वारा नम्रतापूर्वक निवेदित हव्य पदार्थों और मधुर सोमरस को ग्रहण करके हर्षित हों ॥६॥

अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥७॥

रूपवान् शरीर को अलंकारों से पूर्ण करने के समान ज्ञानी पुरुष यज्ञ कुण्ड को यज्ञ-साधन व्यादि से पूर्ण करते और अग्नि से तपाते हैं । यह यज्ञकुण्ड यज्ञ सम्पन्न करने के लिए अपने भीतर अग्नि को उसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार पिता अपने प्रिय पुत्र को गोद में धारण करता है ॥७॥

अच्छा मही बृहती शंतमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥८॥

पूज्य, महान् और सुखप्रद हमारी वाणी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ-स्थल पर बुलाने के लिए दूत रूप में सीधी गमन करे हे सुखदायक अश्विनीकुमारो !गमनशील रथ की धुरी की नाभि में लगी हुई कील के समान आप हमारे यज्ञ के मुख्य आधार हैं ।अतएव आप रथ पर आरूढ़ होकर हमारे यज्ञ में निधि के रूप में दर्शनीय हों ॥८॥

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९॥

अत्यन्त बलशाली और वेगपूर्वक गमन करने वाले पूषा और वायुदेव के लिए हम नमस्कारपूर्वक स्तुति वचनों को कहते हैं । ये पूषा और वायुदेव आराधना किए जाने पर बुद्धि को प्रेरित करते हैं और आराधक को उत्तम अन्न एवं बल से युक्त करते हैं ॥९॥

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥१०॥

प्राणिमात्र को जानने वाले हे अग्निदेव ! हमारे आवाहन किये जाने पर आप विभिन्न नामों वाले और विभिन्न रूपों वाले मरुतों के साथ उपस्थित हों । हे मरुतो ! आप सब स्तोताओं की वाणी युक्त उत्तम स्तुतियों को श्रवण कर उत्तम रक्षण-साधनों सहित हमारे यज्ञस्थल पर पधारें ॥१०॥

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११॥

हम सभी लोगों द्वारा पूजनीय सरस्वती देवी द्युलोक से और पर्वतों से हमारे यज्ञ में पहुँचे । घृत सदृश कान्तिमती वे देवी हमारी हवियों को स्वीकार करती हुई स्वेच्छा से हमारे सुखकारी वचनों का श्रवण करें ॥११॥

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२॥

अत्यन्त मेधावी, नील वर्ण प्रभायुक्त शरीर वाले, महान् बृहस्पतिदेव हमारे यज्ञगृह में अधिष्ठित हों। यज्ञगृह के मध्य श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित दीप्तिमान, स्वर्णिम आभा सम्पन्न, प्रकाशक देव बृहस्पति की हम सब सेवा करें ॥१२॥

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३॥

सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले अग्निदेव, सम्पूर्ण रक्षण साधनों के साथ हमारे यज्ञस्थल पर आगमन करें । वे अत्यन्त दीप्तिमान् , आनन्दप्रद और सबके द्वारा आवाहन किये जाने वाले हैं। वे अग्निदेव प्रज्वलित शिखावाले, ओषधि से आच्छादित होने वाले, अबाधगति वाले, त्रिवर्ण (रोहित, शुक्ल और कृष्ण वर्ण) ज्वालाओं वाले हैं। वे अभीष्टवर्धक और अन्नों के धारणकर्ता हैं ॥१३॥

मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४॥

सम्पूर्ण होता और ऋत्विग्गण मातृरूप पृथ्वी के शुभ और अत्यन्त उच्च स्थान (उत्तर वेदी) पर गमन करते हैं। जैसे कोमल शिशु को वस्त्रों से आच्छादित करते हैं, वैसे हीं नवजात सुखकारक अग्नि पर हविदाता यजमान स्तुतियों के साथ हविष्यान्न का आवरण बनाते हैं ॥१४॥

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त महान् स्वरूप वाले हैं। आपकी स्तुति करते हुए बुढ़ापे को प्राप्त ये दम्पती (पति-पत्नी) एक साथ आपको विपुल अन्न देते रहे हैं । हे देवों के देव अग्निदेव ! आप हमारे उत्तम आवाहन से बुलाए जाते हैं। मातृरूप पृथ्वी हमें दुर्बुद्धि में स्थापित न करे ॥१५॥

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६॥

हे देवो ! हम आपके अनुग्रह से निर्बाधित रहकर अतिशय विस्तृत सुखों में निमग्न रहें ॥१६॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७॥

हम लोग अश्विनीकुमारों के मंगलकारी, सुखकारी अनुग्रहों और उनके रक्षण-साधनों से संयुक्त हों, जो अतिशय नूतन हों ।हे अविनाशी अश्विनीकुमारो !आप हमें उत्तम ऐश्वर्य, वीर सन्तान और सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करें ॥१७॥

# सूक्त ४४

ऋषि: काश्यपोऽवत्सार:
देवता – विश्वेदेवा, ११ रुद्र । छंद – जगती, १४-१५ त्रिष्टुप

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥१॥

पुरातन समय के याजकों, हमारे पुरखों तथा इस काल के सभी प्राणियों की भाँति हमें भी इन्द्रदेव की स्तुतियाँ करके अपने मनोरथ पूर्ण करें । वे इन्द्रदेव देवताओं में ज्येष्ठ सर्वज्ञाता, हम सबके सामने कुशासन, बली, गतिमान् और विजयशील हैं। उन्हें स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करें ॥१॥

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वर्गलोक में अपनी आभा से प्रकाशित होते हैं। आप अवृष्टिकारक मेघों के मध्य स्थित सुन्दर जलराशि को बहाते हैं और सम्पूर्ण दिशाओं को शोभा से युक्त करते हैं । आप वृष्टि आदि उत्तम कर्मों द्वारा प्रजाओं के रक्षक हैं। आप प्राणियों की हिंसा न करने वाले और प्रपंचों को दूर करने वाले हैं; इसीलिए आपका नाम सत्यलोक में चिरकाल से विद्यमान है ॥२॥

अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥

वे अग्निदेव अबाध गति वाले, अरणि मंथन से बलपूर्वक उत्पन्न होने वाले और यज्ञ-सम्पादक हैं। वे स्थिर और अस्थिर सत्यरूप हवियों को प्राप्त करते हैं। प्रारम्भ में वे अग्निदेव कुश पर बैठकर शिशु रूप होते हैं, तदनन्तर समिधाओं के मध्य विराजित होकर अत्यन्त तरुण और अजर अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥३॥

प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥

सूर्यदेव की ये किरणें यज्ञ को बढ़ाने वाली, याज्ञिक को धन-ऐश्वर्य देने वाली, यज्ञ में गमन करने की कामना करती हुई अवतीर्ण होती हैं । सूर्यदेव से उत्पन्न ये रश्मियाँ उत्तम वेग से अवतीर्ण होने वाली, सब

पर शासन करने वाली और अन्तरिक्ष मार्ग से जल राशि का शोषण करने वाली हैं ॥४॥

संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त सरल पथ से गमन करने वाले हैं । समिधाओं से प्रदीप्त होकर आप आयुवर्द्धक अभिघुत सोमरस का पान करने वाले हैं। विद्वान् साधकों की हृदय गुहा में स्थापित होकर अत्यन्त शोभायमान होते हैं । यज्ञ में चैतन्य होकर आप पत्नीरूप ज्वालाओं को प्रवर्धित करें ॥५॥

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६॥

ये देवगण जिस प्रकार दृष्टिगत होते हैं, वैसे ही वर्णित भी होते हैं । इन देवों ने अपने सिद्ध तेजों से जल के आवरण में समायी पृथ्वी को धारण किया । ये देवगण हमें महान् विजय, उत्तम वीर पुत्र, अक्षय धन और विराट् बल प्रदान करें ॥६॥

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥

सर्व उत्पादक, श्रेष्ठ क्रान्तदर्शी सूर्यदेव अपने उत्कंटित मन के कारण सभी स्पर्धावान् ग्रह-नक्षत्रों से अग्रणी रहते हैं । सम्पूर्ण विश्व की चारों ओर से रक्षा करने वाले तेजस्वी सूर्यदेव की हम सम्यक् रूप से स्तुतियाँ करें । सूर्यदेव हमें दीप्तिमान् एवं श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अतिशय सुख प्रदान करें॥७॥

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥

श्रेष्ठ यज्ञ सम्पादक हे अग्निदेव ! ऋषियों की स्तुतिपरक वाणीं आपके निकट ही गमन करती है। इन स्तुतियों से आपका नाम (यश) संवर्द्धित होता है। वे ऋषिगण जिसकी कामना करते हैं; उसे अपने पराक्रम से प्राप्त कर लेते हैं। जिस कार्यभार को स्वयं वहन करते हैं, उसे सिद्ध भी कर लेते हैं ॥८॥

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥

इन स्तोत्रों में सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र (प्रकाश के ) समुद्र के समान, सूर्यदेव तक पहुँचकर प्रतिष्ठित हों । जिन यज्ञों में इन स्तोत्रों का विस्तार होता

है, वे कभी नष्ट नहीं होते हैं। जहाँ पवित्र भावों से बँधी हुई बुद्धि रहती है, वहाँ याज्ञिकों के हृदयगत मनोरथ कभी विफल नहीं होते ॥९॥

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०॥

वे सवितादेव हम सबके द्वारा अत्यन्त रमणीय स्तोत्रों से स्तुति किये जाने योग्य हैं । सम्पूर्ण विद्वानों द्वारा भी अतिशय पूज्य हैं। हम क्षत्र, मनस, अवद, यजत, सधि और अवत्सार नामक ऋषिगण सूर्यदेव की स्तुतियों द्वारा श्रेष्ठ बलों और अन्नों की कामना करते हैं ॥१०॥

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११॥

यह सोमरस जनित हर्ष कक्षा (उदर) को परिपूर्ण करने वाला, श्येन के सदृश सर्वत्र गमनशील और अदिति की तरह व्यापक है। यह सोमरस विश्ववार, यजत और मायी ऋषियों द्वारा अभिषुत होता है । ये सभी इसका पान करके हर्षित और पुष्ट होने की कामना करते हैं ॥११॥

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥

जो देवगणों की उत्तम स्तुतियाँ करने वाले हैं, वे सदापृण, यजत, बाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य ऋषिगण सब मिलकर अपने शत्रुओं का संहार करें। वे ऋषिगण दोनों लोकों-इस लोक और परलोक के मनोरथों को प्राप्त करते हुए तेजस्विता से दीप्तिमान् हों; क्योंकि वे विश्वेदेवों की विशेष स्तुतियाँ करते हैं ॥१२॥

सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥

यजमान अवत्सार के यज्ञ में सुतम्भर ऋषि, सत्यधर्म (यज्ञादि) कार्यों के पालक हैं । वे सम्पूर्ण यज्ञादि कार्यों में स्तुतियों के स्रोत स्वरूप हैं । इस यज्ञ में गौएँ रसरूष पेय पदार्थों को प्रदान करती हैं। सभी स्तोतागण इस यज्ञ के सारभूत फलों को प्राप्त करते हैं, अन्य सोने वाले व्यक्ति नहीं ॥१३॥

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥

जो जाग्रत् हैं, उन्हीं से रुचाएँ अपेक्षा रखती हैं। जाग्रतों को ही सामगान का लाभ मिलता हैं । जाग्रतों से ही सोम कहता है कि " मैं तुम्हारे मित्र भाव में ही रहता हूँ " ॥१४॥

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥

अग्निदेव जाग्रत् रहते हैं, इसीलिए वह ऋचाओं द्वारा चाहे जाते हैं । अग्निदेव चैतन्यवान् हैं, अत: साम उसका गान करते हैं। चैतन्य (प्रज्वलित) अग्नि से ही सोम कहता है-" मैं सदा आपके मित्रभाव में आश्रय स्थान प्राप्त करूँ ॥१५॥

# सूक्त ४५

ऋषि: सदापृण आत्रेय:
देवता – विश्वेदेवा । छंद – त्रिष्टुप, ९ पुरस्ताज्ज्योति:

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥१॥

अंगिराओं की स्तुतियों से इन्द्रदेव ने स्वर्ग से वज्र द्वारा मेघों पर संघात किया, जिससे आने वाली उषा की रश्मियों का द्वार खुला और किरणे सर्वत्र व्याप्त हो गयीं । घनीभूत तमिस्रा विनष्ट हुई और सूर्यदेव प्रकट हुए। उन सूर्यदेव ने सब मनुष्यों के द्वारों को खोला ॥१॥

वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥२॥

जैसे मनुष्य आकर्षक वस्त्रालंकारों से सुन्दर रूप पाता है, वैसे ही सूर्यदेव विभिन्न वर्ण वाली दीप्तियों से शोभायमान होते हैं। प्रकाशक

रश्मियों की मातृरूप उषा, सूर्योदय का दर्शन करते हुए विशाल आकाश से अवतीर्ण होती हैं। तट से तीव्र संघात करती हुई प्रवहमान नदियाँ अतिवेग से प्रवाहित होती हैं। घर में स्थित सुदृढ़ स्तम्भ की भाँति द्युलोक तीव्र प्रकाश से सुदृढ़ हुआ है ॥२॥

अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३॥

इन चिर-पुरातन स्तोत्रों द्वारा भूमि को उत्पादनशील बनाने के लिए मेघ का गर्भ रूप वृष्टि जल बरसता है । आकाश वृष्टि कार्य में साधन रूप में प्रयुक्त होता हैं । निरन्तर कर्मशील मनुष्य अधिक परिश्रम में उद्यत होते हैं ॥३॥

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! हम अपनी रक्षा के लिए देवों द्वारा सेवनीयसूक्तरूप वचनों से आप दोनों का आवाहन करते हैं । उत्तम प्रकार से आपका यज्ञ सम्पादन करने वाले मरुतों के सदृश आपकी परिचर्या करने वाले ज्ञानीजन आपकी पूजा करते हैं ॥४॥

एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।

आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥

(हे देवो !) आप हमारे इस यज्ञ में शीघ्र आगमन करें । हम उत्तम कर्मों को करने वाले हों । आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें । प्रच्छन्न शत्रुओं को अतिशय दूर ही रखें और यज्ञ के निमित्त यजमानों की ओर गमन करें ॥५॥

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥

हे मित्रो ! आओ हम स्तुतियाँ करें, जिसके द्वारा मातृरूप उषा ने विस्तृत किरण समूह को उत्पन्न किया; जिसके द्वारा मनु ने विशिशिप्र (वृत्र) को जीता था, और वंकु वणिक् ने विस्तृत जल-राशियों को प्राप्त किया था ॥६॥

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७॥

जिस पाषाण से सोमरस का अभिषवण करके नवग्वों ने दस मास तक पूजा-अर्चना की, वहीं पत्थर इस यज्ञ में हाथों से संयुक्त होकर निनादित होता है । यज्ञ के अभिमुख होकर सरमा ने स्तुतियों को प्राप्त किया; तदनन्तर अङ्गिरा ने सभी कर्म सफल कर दिखाये ॥७॥

विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद्गाः ॥८॥

इन पूजनीय उषा के प्रकट होने पर सभी अंगिराओं ने अपनी गौओं से दुग्ध प्राप्त किया। गौओं के दूध को उन्होंने यज्ञस्थल के उच्च-स्थान में स्थापित किया। सरमा ने यज्ञ मार्ग से गमन करते हुए उनकी स्तुतियों को जाना॥८॥

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद्गोषु गच्छन् ॥९॥

सात अश्वों से संयुक्त होकर सूर्यदेव हमारे सम्मुख आएँ, क्योंकि उन्हें दीर्घ प्रवास के लिए अत्यन्त दूर स्थित गंतव्य की ओर जाना है। वे श्येन पक्षी की तरह द्रुतगामी होकर हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न प्राप्त करने के लिए अवतीर्ण हों । वे अत्यन्त युवा और क्रान्तदर्शी सूर्य किरणों के मध्य अवस्थित होकर देदीप्यमान हों ॥९॥

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०॥

जब सूर्यदेव ने कान्तिमान् शरीर वाले अश्वों को रथ से युक्त किया, तब सूर्यदेव अन्तरिक्षव्यापी जल पर आरूढ़ हुए । तदनन्तर जैसे जल में डूबी नाव को बाहर निकालते हैं, वैसे ही विद्वानों ने स्तोत्रों से सूर्यदेव को बाहर निकाला। उनकी स्तुतियों से जल राशि भी नीचे अवतीर्ण हुई ॥१०॥

धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११॥

हे देवो ! जिन स्तुतियों से नवग्वों ने दस मास तक साध्य यज्ञ-अनुष्ठान किया था । जल प्राप्त कराने वाली, उत्तम ऐश्वर्य देने वाली उन स्तुतियों को हम धारण करते हैं। इन स्तुतियों से हम देवों द्वारा रक्षित हों और पाप-कर्मों से भी संरक्षित हों ॥११॥

# सूक्त ४६

ऋषि: प्रतिक्षत्र आत्रेय:
देवता – विश्वेदेवा, ७-८ देवपत्न्य: । छंद – जगती, २,८ त्रिष्टुप

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१॥

अश्व जिस प्रकार रथ के जुए में जुड़ जाता है, उसी प्रकार विद्वान् (प्रतिक्षत्र) धुरी (यज्ञ) के साथ स्वयं योजित हो जाते हैं। हम भी उस विघ्नहर्ता और रक्षणकर्ता यज्ञ के भार को वहन करते हैं । इस भार-वहन से विमुक्त होने की इच्छा हम नहीं करते, बल्कि बारम्बार भार को धारण करने की कामना करते हैं। हे मार्ग जानने वाले देव ! आप हमारे मार्ग में अग्रगामी होकर सरल मार्ग द्वारा हमें ले चलें ॥१॥

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥

हे अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र , मरुत् और विष्णु आदि देवताओ ! आप हमें सामर्थ्य प्रदान करें । दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, देवपत्नियाँ, पूषा, भग, सरस्वती हमारी हवियाँ ग्रहण करें ॥२॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥

इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, द्युलोक, आदित्य, मरुत्, पर्वत समूह, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भगदेव और सविता आदि देवों का हम आवाहन करते हैं, वे इस यज्ञशाला में शीघ्र पधारें एवं हमारी रक्षा करें ॥३॥

उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४॥

विष्णुदेव और अहिंसक वायुदेव तथा धन प्रदाता सोमदेव हमें सर्व सुख प्रदान करें। ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, त्वष्टा और विभुगण; ये सभी देव हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए अनुकूल प्रेरणा प्रदान करें ॥४॥

उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५॥

वे स्वर्ग में रहने वाले एवं पूजनीय मरुद्गण हमारे यज्ञ में कुशाओं पर बैठने के लिए आगमन करें । बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमादेव हमें गृह सम्बन्धी सभी सुख प्रदान करें ॥५॥

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्यस्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥

वे उत्तम स्तुति के योग्य और दान देने वाली नदियाँ, हमारे परित्राण के लिए उद्यत हों । वे धनों को बाँटने वाले भगदेव अपने बल और संरक्षण साधनों के साथ हमारे निकट आगमन करें । व्यापक प्रभायुक्त अदिति देवी हमारे आवाहन को सुनें ॥६॥

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत
॥७॥

इन्द्रादि देवों की पत्नियाँ (स्तुतियों से ) उत्साहित होकर हमारी रक्षा करें । उनके संरक्षण में हम पुत्रों और अन्न आदि के लाभ प्राप्त करें । ये देवियाँ चाहे पृथ्वी पर हों या अन्तरिक्ष और द्युलोक में हों; हमारे उत्तम आवाहन को सुनकर हमें सभी सुख प्रदान करने हेतु पधारें ॥७॥

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८॥

सभी देवियाँ, देवपत्नियाँ भली प्रकार हमारी रक्षा करें । इन्द्राणी, अग्नायी, दीप्तिमती, अश्विनी, रोदसी, वरुणानी हमें परिरक्षित करें । इनके मध्य जो ऋतुओं की जन्मदात्री देवी हैं, वे भी हमारी स्तुतियाँ श्रवण करें ॥८॥

# सूक्त ४७

ऋषि: प्रतिरथ आत्रेय:
देवता – विश्वेदेवा । छंद –त्रिष्टुप

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१॥

ये स्तुत्य, अत्यन्त विस्तृत मातृरूप उषादेवी अपनी पुत्री पृथ्वी को चैतन्य करती हैं। प्राणियों को अपने कर्मों में योजित करती हुई ये आकाश से प्रकाशित होती हैं । सबकी परिचर्या करने वाली ये तरुणी उषा बुद्धिपूर्वक स्तोत्रों से आवाहित होने पर यज्ञ-गृह में पितृ रूप देवों के साथ आगमन करती हैं ॥१॥

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२॥

सतत गमनशील, प्रकाशित होकर कर्मों को सम्पादित करती हुई अमृत रूप सूर्यदेव की नाभि में स्थित रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होकर अनन्त पथों से द्यावा और पृथिवी का परिभ्रमण करती हैं ॥२॥

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३॥

समुद्र में जल को सिंचित करने वाले दीप्तिमान्, सुन्दर रश्मियों से युक्त ये सूर्यदेव अपने पितृ रूप आकाश के पूर्व स्थान में समाविष्ट हुए हैं। विविध दीप्तियुक्त उल्का के सदृश ये सूर्यदेव आकाश के मध्य में स्थापित होकर परिभ्रमण करते हैं और अन्तरिक्ष जगत् की सीमाओं की रक्षा करते हैं ॥३॥

चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४॥

अपने कल्याण की कामना करते हुए चार ऋत्विग्गण हव्यादि देकर इन सूर्यदेव को धारण करते हैं । दसों दिशाएँ अपने गर्भ से उत्पन्न सूर्यदेव को गति के लिए प्रेरित करती हैं। तीनों लोकों में गमनशील सूर्यदेव की श्रेष्ठ किरणे द्रुतवेग से आकाश के सीमा प्रदेशों में भी परिभ्रमण करती हैं ॥४॥

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥५॥

हे मनुष्यो ! जिनके कारण ये नदियाँ प्रवाहशील हैं और जल स्थिर रहते हैं, उन सूर्यदेव का शरीर स्तुत्य हैं। माता पृथ्वी के स्वयं उत्पादक उन सूर्यदेव को विश्व-नियामक और बंधुत्व युक्त दो लोक धारण करते हैं ॥५॥

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६॥

जैसे माताएँ अपने पुत्रों के वस्त्र बुनती हैं, वैसे यजमान इन सूर्यदेव के लिए स्तुतियां और यज्ञादि कर्म की रचना करते हैं। इन वर्षणशील सूर्यदेव के प्रकट होने पर इनकी पत्नीरूप रश्मियाँ हर्षित होती हुई आकाश-पथ से होकर हमारे पास आती हैं ॥६॥

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥७॥

हे मित्रावरुण देवो ! यह स्तोत्र आपके निमित्त है । हे अग्निदेव ! यह स्तोत्र हमारे सुख प्राप्ति के लिए आपके निमित्त है । हमें उत्तम स्थान एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो । सभी को श्रेष्ठ आश्रय प्रदान करने वाले सूर्यदेव को हम नमस्कार करते हैं ॥७॥

# सूक्त ४८

ऋषि: प्रतिभानुरात्रेय:
देवता – विश्वेदेवा । छंद – जगती

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१॥

हम अपने बल के निमित्त, अपने यश के लिए और प्रीतिकर महान् तेज के लिए किस तरह की अर्चना करें ? यह माया रूप आच्छादन विस्तृत करने वाली शक्ति अपरिमित अन्तरिक्ष में मेघों के ऊपर जल राशि को फेलाती हैं ॥१॥

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२॥

उन उषाओं ने वीर पुरुषों के कर्मों में उत्साह को विस्तारित किया । एक समान प्रकाशक आवरण से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त किया। देवत्व की अभिलाषा वाले मनुष्य अवतीर्ण होने वाली एवं निवर्तमान

उषाओं को त्यागकर वर्तमान उषा के सामने ही अपने कर्मों (यज्ञादि) का विस्तार करते हैं ॥२॥

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३॥

सम्पूर्ण दिन और रात्रि में लगातार पत्थरों से अभिषुत सोम द्वारा हर्षित होकर इन्द्रदेव ने उस मायावी वृत्र के ऊपर अपने उत्कृष्ट वज्र का संघात किया । इन्द्र रूप सूर्यदेव की सैकड़ों किरणे दिनों के चक्र में प्रवृत्त और निवृत्त होती हुई अपने गृह-आकाश में परिभ्रमण करती रहती हैं ॥३॥

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥

परशु के समान तीक्ष्ण उन अग्निदेव के स्वभाव को हम जानते हैं । रूपवान् , आदित्यरूप अग्निदेव के किरण समूह की स्तुति हम ऐश्वर्य के उपयोग के लिए करते हैं । ये अग्निदेव सहायक होकर यज्ञ-स्थान में यजमाने को अन्नों से अभिपूरित गृह और उत्तम रत्न प्रदान करते हैं ॥४॥

स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।

न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥५॥

रमणीय तेजरूपी आच्छादन धारण कर अग्निदेव अन्धकार रूप शत्रु को मारते हैं। वे चारों ओर ज्वालाओं को विस्तृत कर जिह्वा रूप ज्वाला से घृतादि का पान करते हैं। जिसके माध्यम से भग और सवितादेव वरणीय धनों को प्रदान करते हैं। उन अग्निदेव के धनैश्वर्य-दान के पराक्रमों का ज्ञान हमें नहीं हैं ॥५॥

# सूक्त ४९

ऋषि: प्रतिप्रभ आत्रेय: ५ तृणपाणि:
देवता – विश्वेदेवा । छंद –त्रिष्टुप

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१॥

यजमानों के लिए आज हम सवितादेव को और भगदेव को आवाहित करते हैं; क्योंकि वे दानशीलों को रन बाँटने वाले हैं । हे बहुत पदार्थों के उपभोगकर्ता, नेतृत्वकर्ता अश्विनीकुमारो ! हम आपसे मैत्री की अभिलाषा करते हुए प्रतिदिन आप दोनों का आवाहन करते हैं ॥१॥

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२॥

हे स्तोताओ ! आप सब उन प्राण-प्रदायक सवितादेव के प्रत्यागमन को जानकर उत्तम वचनों से उनकी स्तुति करें । यजमानों को श्रेष्ठ

रत्न बाँटने वाले उन सवितादेव को जानकर नमस्कारपूर्वक उनकी स्तुतियाँ करें ॥२॥

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३॥

पूषा, भग और अदिति-ये देव वरण करने योग्य हविष्यान्न को ग्रहण करते और वरणीय अन्न को यजमानों को देते हैं। इन्द्र, विष्णु, वरुण, मित्र और अग्नि आदि दर्शनीय देव कल्याणकारी दिवस को उत्पन्न करते हैं ॥३॥

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥४॥

हम यज्ञ के सम्पादनकर्ता देव की स्तुतियाँ करते हैं। वे अपराजित सवितादेव हमें अहणीय धन दें। प्रवाहशील नदियाँ भी उस धन को प्रदान करें। हम ऐश्वर्यों के अधिपति होकर अन्न-रत्नों के अधिपति बनें ॥४॥

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५॥

जो यजमान वसुओं को हवियाँ प्रदान करते हैं, मित्र और वरुण देव के निमित्त उत्तमसूक्तवचनों द्वारा स्तुतियों करते हैं। हे देवगणो उन्हें ऐश्वर्य से युक्त करें।हम द्युलोक और पृथिवीं लोक का संरक्षण प्राप्त कर हर्षित हों ॥५॥

## सूक्त ५०

ऋषि: स्वस्त्यात्रेय:
देवता – विश्वेदेवा । छंद – अनुष्टुप, ५ पंक्ति

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥१॥

सभी मनुष्य सर्वप्रेरक सवितादेव की मित्रता का वरण करते हैं। वे मनुष्य अपने पोषण के लिए दीप्तिमान् धनों को प्राप्त करते हैं और ऐश्वर्यं के अधिपति होते हैं ॥१॥

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्यापृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२॥

हे अग्रणी देव ! जो मनुष्य आपकी और अन्य देवों की उपासना करते हैं, वे सब आपके ही हैं। वे सब धनों से युक्त होकर पूर्णकाम हों ॥२॥

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।

आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥३॥

हे ऋत्विजो ! आप हमारे इस यज्ञ में अतिथि के समान पूज्य देवों की सेवा करें । उन देवों की पत्नियों की भी सेवा करें। वे विघ्नविनाशक सवितादेव हमारे सम्पूर्ण पथों के विघ्नों और शत्रुओं को दूर करें ॥३॥

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४॥

जहाँ अग्नि स्थापित होने के अनन्तर यूप योग्य पशु, यूप के निकट स्तुत्य होता है; वहाँ यजमान सवितादेव के अनुग्रह से उत्साहपूर्ण मन और पुत्र-पौत्रादि एवं भार्यायुक्त गृह प्राप्त करता है ॥४॥

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥

हे सर्वनियामक सवितादेव ! आपका यह रथ ऐश्वर्य प्रदाता, सुखदाता और पालन करने वाला है। हम स्तोता सुखकर ऐश्वर्य और सुखकर कल्याण के लिए आपकी स्तुति करते हैं। देवों की स्तुतियों के साथ आपकी भी बारम्बार स्तुति करते हैं ॥५॥

# सूक्त ५१

ऋषि: स्वस्त्यात्रेय:
देवता – विश्वेदेवा , ४, ६-७ इन्द्रवायु, ५ वायु । छंद – १-४ गायत्री:, ५-१० उष्णिक्, ११-१३ जगती त्रिष्टुब्वा, १४-१५ अनुष्टुप

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि ।
देवेभिर्हव्यदातये ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सोमरस का पान करने के निमित्त सभी संरक्षक देवों के साथ हव्य-प्रदाता यजमान के पास आयें ॥१॥

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् ।
अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२॥

हे सत्य स्तुति योग्य देवो ! हे सत्य धारणकर्ता देवो ! आप सब हमारे यज्ञ में आयें । अग्नि की जिह्वा रूप ज्वालाओं द्वारा सोमरस अथवा घृतादि का पान करें ॥२॥

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि ।
देवेभिः सोमपीतये ॥३॥

हे मेधावी सेव्य (सेवा के योग्य) अग्निदेव ! आप प्रातः काल में आने वाले ज्ञानियों और देवों के साथ सोमपान के निमित्त यहाँ आये ॥३॥

अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते ।
प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४॥

पाषाणों द्वारा कूटकर अभिषुत हुआ सोम पात्रों में छानकर भरा जाता है । यह सोम इन्द्र और वायुदेवों के लिए अत्यन्त प्रीतिकर है ॥४॥

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५॥

हे वायुदेव ! सोम पान करने के लिए और विदाता यजमान की प्रीति के लिए आप हव्य प्राप्त करने पधारें; हविष्यान्न ग्रहण करें और अभिषुत सोम को पान करें ॥५॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६॥

हे वायुदेव ! आप और इन्द्रदेव इस अभिषुत हुए सोम का पान करने योग्य हैं । अहिंसक होकर आप आयें और हव्य रूप सोम का सेवन करें ॥६॥

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥७॥

इन्द्र और वायु देवों के लिए दधि मिश्रित सोमरस अभिषुत हुआ है । हे इन्द्र और वायुदेवो ! नीचे की ओर प्रवाहित नदियों के समान यह हविष्यान्न आपकी ओर ही जाता है ॥७॥

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८॥

हे अग्निदेव ! सम्पूर्ण देवों के साथ अश्विनीकुमारों और उषा के साथ समान प्रीतियुक्त होकर इस यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में हर्षित होते हैं, वैसे आप हमारे अभिषुत सोम से हर्षित हों ॥८॥

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप मित्र और वरुण के साथ तथा विष्णु और सोम के साथ हमारे यज्ञ में आगमन करें। जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में प्रमुदित होते हैं, वैसे ही आप भी हमारे अभिषुत सोम से प्रमुदित हों ॥९॥

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप आदित्य और वसुओं के साथ तथा इन्द्र और वायु के साथ समान प्रीति युक्त होकर हमारे यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में हर्षित होते हैं, वैसे आप हमारे अभिषुत सोम से हर्षित हों ॥१०॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११॥

दोनों अश्विनीकुमार हमारे निमित्त कल्याण करें। भगदेवता और देवी अदिति हमारा कल्याण करें। अपराजित और प्राण दाता पूषादेव हमारा कल्याण करें । उत्तम ज्ञानी (प्रचेता) द्यावा-पृथिवी हमारा कल्याण करें ॥११॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥

हम अपने कल्याण के लिए वायुदेव का स्तवन करते हैं । सम्पूर्ण भुवनों के अधिपति सोम की स्तुति हम कल्याण के लिए करते हैं । सर्वगणों के अधीश्वर बृहस्पतिदेव की स्तुति हम कल्याण के लिए करते हैं । देवरूप आदित्य के पुत्र, देवरूप अरुणादि द्वादशदेव हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥१२॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥

इस यज्ञ में सम्पूर्ण देवगण हमारे कल्याण के रक्षक हों । सम्पूर्ण विश्व के नियामक और आश्रयदाता अग्निदेव हमारे कल्याण के रक्षक हों । दीप्तिमान् ऋभुगण हमारी रक्षा करते हुए कल्याणकारी हों । रुद्रदेव हमें पापों से रक्षित कर कल्याणकारी हों ॥१३॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४॥

हे मित्रावरुण देवो ! आप हमारा कल्याण करें । हे मार्गप्रदर्शिका और धनवती देवि ! आप हमारा कल्याण करें । इन्द्र और अग्निदेव हमारा कल्याण करें । हे अदिति देवि ! आप हमारा कल्याण करें ॥१४॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५॥

सूर्य और चन्द्रमा के सदृश हम बाधारहित पथों के अनुगामी हों । निरन्तर दान से युक्त होकर, ज्ञान से युक्त होकर, परस्पर टकराव या हिंसा से रहित होकर हम सुखपूर्वक सहगमन करें ॥१५॥

# सूक्त ५२

ऋषिः श्यावाश्व आत्रेयः
देवता – मरुतः । छंद – अनुष्टुप, ६, १६-१७ पंक्ति

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥१॥

हे श्यावाश्व ऋषे ! आप संघर्षक शक्ति-सम्पन्न, स्तुत्य मरुतों की प्रकृष्ट अर्चना करें । ये यज्ञ के योग्य मरुद्गण अहिंसक हविरूप अन्नों को धारण कर हर्षित होते हैं ॥१॥

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२॥

वे स्थायी बलों के सहायक रूप हैं। वे शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले हैं। वे भ्रमण करते हुए हमारे वीर पुत्रों को विजयशील सामर्थ्य देकर उन्हें परिरक्षित करते हैं ॥२॥

ते स्यन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३॥

ये स्पन्दनयुक्त और वृष्टिकारक मरुद्गण रात्रि का अतिक्रमण करके आगे बढ़ते हैं। इसलिए अब हम मरुतों के आकाश और भूमि में व्याप्त तेजों की स्तुति करते हैं॥३॥

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४॥

आक्रामक सामर्थ्य से युक्त मरुतों के लिए हम स्तुति और यज्ञ के साधन हव्यादि अर्पित करते हैं । ये मरुद्गण मानव युगों में हिंसकों से, मरणशील मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥४॥

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५॥

हे ऋत्विजो ! जो पूजनीय, उत्तम दानशील, असीम बल सम्पन्न, नेतृत्वकर्ता वीर हैं, उन यज्ञ योग्य और प्रकाशक मरुद्गणों के लिए यज्ञ के साधन हविष्यान्न अर्पित कर विशिष्ट अर्चना करें ॥५॥

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।

अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६॥

दीप्तिमान् , अलंकारों से विभूषित , आयुधों से युक्त होकर महान् नेतृत्वकर्ता मरुद्गण विशेष शोभायमान होते हैं। ये अपने विशेष आयुधों द्वारा मेघों पर संघात करते हैं । विशेष शब्द करती हुई प्रवाहित नदियों के समान विद्युत् , मरुतों की अनुगामिनी होती है । दीप्तिमान् मरुद्गणों का तेज स्वयं ही निस्सृत होता है ॥६॥

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥७॥

पृथ्वी पर अवस्थित, विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में अवस्थित, नदियों के प्रवाह में अवस्थित, संग्राम क्षेत्रों में और महान् द्युलोक के मध्य में अवस्थित ये मरुद्गण सब प्रकार से प्रवर्धित होते हैं ॥७॥

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥८॥

सत्य बल से निरन्तर विवर्धमान मरुतों के उत्कृष्ट बल की स्तुति करें । ये स्पंदनशील और नेतृत्वकर्ता मरुद्गण प्रत्येक शुभकार्य में स्वयं योजित होते हैं ॥८॥

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥९॥

वे मरुद्गण परुष्णी नामक नदी में अवस्थित रहते हैं। सबको शुद्ध करने वाली दीप्ति द्वारा स्वयं को आच्छादित करते हैं । वे अपने बल से रथ चक्रों ( चक्रवातों) को प्रक्षिप्त कर पर्वती (मेघों) का भी भेदन करते हैं ॥९॥

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०॥

जो मरुद्गण 'आपथय:' (सामने के मार्गों से गमन करने वाले), 'विपथय:' (विविध मार्गों से गमन करने वाले), 'अन्त: पथा:' (गुह्य मार्गों से गमन करने वाले) और 'अनुपथा:' (अनुकूल मार्गों से गमन करने वाले)-इन चारों नामों से विख्यात हुए हैं, वे मरुद्गण हमारे लिए यज्ञ के हविष्यान्न वहन करते है ॥१०॥

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११॥

(ये मरुद्गण) कभी अग्रणी होकर, कभी नियुक्त (सह्योगी) होकर, कभी दूर रहकर ही (संसार को) धारण करते हैं। इस प्रकार इनके विभिन्न स्वरूप विचित्र और दर्शनीय होते हैं ॥११॥

छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

छन्दों द्वारा स्तुति करने वाले और जल की इच्छा करने वाले स्तोताओं के निमित्त मरुतों ने जल-प्रवाह प्रेरित किया। उनमें कुछ मरुद्गणों ने तस्करों की भाँति अदृश्य होकर रक्षा की थी और कुछ साक्षात् दृष्टिगत होकर उन्हें तेजस्वी बल प्रदान करते थे ॥१२॥

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥

हे ऋषिगण ! जो मरुद्गण विद्युत्रूपी आयुधों से दीप्तिमान् होते हैं, जो महान्, क्रान्तदर्शी और मेधा-सम्पन्न हैं; उन मरुद्गणों का हर्षप्रद स्तुतियों से अभिवादन करें ॥१३॥

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४॥

हे ऋषिगण ! प्रिय मित्र के पास जाने की तरह आप हविष्यान्न लेकर मरुतों के पास उपस्थित हों । हे आक्रामक बल से पराभव करने वाले मरुतो ! आप लोग द्युलोक या अन्य लोकों से हमारे यज्ञ में पधारें और स्तुतियाँ ग्रहण करें ॥१४॥

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५॥

स्तोतागण मरुतों की स्तुति करके अन्य देवों की स्तुति करने की इच्छा नहीं करते। वे ज्ञान सम्पन्न, शीघ्रगमनकारी, प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठफलदाता मरुतों से ही अभीष्ट दान प्राप्त कर लेते हैं ॥१५॥

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६॥

उन ज्ञानी मरुतों ने बंधुओं के जानने की इच्छा से यह वचन कहा कि-"गौएँ (किरणें) और पृथ्वी हमारी माताएँ हैं " और सामर्थ्यवान् मरुतों ने यह भी कहा कि-"वेगवान् रुद्र हमारे पिता हैं " ॥१६॥

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७॥

सात-सात संख्यक समर्थ मरुद्गण एक होकर हमें सौ (सैकड़ो) गौओं और अश्व (पोषक एवं शक्तिवर्द्धक प्रवाह) प्रदान करें । उनके द्वारा प्रदत्त प्रसिद्ध गौओं के समूह को हम यमुना नदी के किनारे पवित्र करते हैं और अश्व रूप धन को भी वहीं पवित्र करते हैं ॥१७॥

# सूक्त ५३

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – १,५,१०-११,१५ ककुप; २ वृहती, ३ अनुष्टुप, ४ पुर उष्णिक, ६-७, ९, १३, १४, १६ सतोवृहती, ८, १२ गायत्री

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१॥

मरुतों ने जब बिन्दुदार (चिह्नित) मृगों को अपने रथ में नियोजित किया, तब इनकी उत्पत्ति को कौन जानता था? कौन भला पहले मरुतों के सुख में आसीन था ? ॥१॥

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२॥

ये मरुद्गण रथ पर अधिष्ठित हैं-यह कौन जानता है ? ये किस प्रकार गमन करते हैं? इनके रथ की ध्वनि को किसने सुना है ?ये मित्ररूप हितैषी, वृष्टिकारक मरुद्गण किस यजमान के लिए बहुत अन्नों के साथ अवतीर्ण होंगे? ॥२॥

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥३॥

तेजस्वी सोमपान से उत्पन्न हर्ष के लिए वे मरुद्गण हमारे निकट उपस्थित हुए तथा कहा-"हम नेतृत्वकर्ता मनुष्यों के हितैषी और निर्दोष मरुद्गण हैं ।" स्तोतागण (ऐसे मरुतों की) स्तुतियाँ करें ॥३॥

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥४॥

ये मरुद्गण जिन दीप्तियों से स्वयं अति प्रकाशमान होते हैं, वे दीप्तियाँ अलंकारों में, मालाओं में, आयुधों में, स्वर्णिम हारों में, कंगनों में, रथों में तथा धनुषों में आश्रयभूत हैं । हम उनकी वन्दना करते हैं ॥४॥

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥५॥

हे शीघ्र दानशील मरुतो ! वृष्टि के सदृश वेगपूर्वक सर्वत्र गमनशील दीप्तिमान् आपके रथ को देखकर हम हर्षित होते हैं और आपका स्तवन करते हैं ॥५॥

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६॥

वे नेतृत्वकर्ता और उत्तम दानशील, दीप्तिमान् हविदाता यजमान के लिए जिस खजाने को सञ्चित कर धारण करते हैं, उसे वे वृष्टि के समान उनमें बाँट देते हैं । वे मरुद्गण द्यावा-पृथिवीं में व्यापक जल के साथ मेघों के समान संचरित होते और वृष्टि करते हैं ॥६॥

ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥७॥

जैसे धेनु दुग्ध सिंचन करती है; वैसे उदक के साथ मेघों को फोड़ती हुई जलराशि अन्तरिक्ष में प्रसारित होती हुई सिंचित होती है । द्रुतगामी अश्व की भाँति वेगपूर्वक प्रवाहित नदियाँ अपने मार्गों को विमुक्त करती जाती हैं ॥७॥

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥८॥

हे मरुतो ! आप सब द्युलोक से, अन्तरिक्ष लोक से या इसी लोक से यहाँ आगमन करें । दूरस्थ प्रदेशों में आप रुके न रहें ॥८॥

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥९॥

हे मरुतो ! रसा, अनितभा, कुभा नदियाँ और वेगपूर्वक गमनशील सिन्धु नदी हमें अवरुद्ध न करें। जल से परिपूर्ण सरयू नदी हमें सीमित न करें । हम आपसे रक्षित होकर सुख में स्थित हों ॥९॥

तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०॥

रथों के बल से युक्त तेजस्वी मरुद्गणों का स्तवन हम करते हैं । मरुद्गणों के साथ वृष्टि वेगपूर्वक गमन करती है ॥१०॥

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११॥

हे मरुतो ! हम आपके प्रत्येक बल का, प्रत्येक समुदाय का और प्रत्येक गण का उत्तम स्तुतियों द्वारा बुद्धिपूर्वक अनुसरण करते हैं ॥११॥

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥१२॥

आज मरुद्गण इस रथ द्वारा किस हविदाता यजमान और किस उत्तम मानव की ओर गमन करेंगे ? ॥१२॥

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३॥

जिस सहृदयता से आप पुत्र-पौत्रों के लिए अक्षय धान्य-बीज वहन करते हैं, उसी हृदय से वह हमें भी दें । हम आपसे सम्पूर्ण आयु और सौभाग्यपूर्ण ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥१३॥

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४॥

हे मरुतो ! हम कल्याण द्वारा पाप वृत्तियों को विनष्ट कर अपने शत्रुओं और गुप्त निंदकों का पराभव करें । हमें सम्पूर्ण शक्तियुक्त सुख, जल और दीप्तियुक्त ओषधि संयुक्त रूप से प्राप्त हो ॥१४॥

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५॥

हे नेतृत्वकर्ता मरुतो ! जिसकी आप रक्षा करते हैं, वह मनुष्य उत्तम तेजवान् , महिमायुक्त और उत्तम पुत्र-पौत्रादि से युक्त होता है, हम भी वैसे ही अनुगृहीत हों ॥१५॥

स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥

हे स्तोताओ ! तृणादि खाने के लिए जाती हुई गौओं के समान यजमान के यज्ञ में भोजन के लिए जाते हुए हर्षित हुए मरुतों की आप स्तुति करें, क्योंकि वे पूर्व परिचित प्रिय मित्रों के समान प्रीतिकर हैं। उन्हें समीप बुलाकर स्तुतियों से प्रशंसित करें ॥१६॥

# सूक्त ५४

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – जगती, १४ त्रिष्टुप

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

हे यजमानो ! इन स्वयंप्रकाशित, पर्वतों को कैंपा देने वाले मरुतों के बल की प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपनी वाणी (स्तोत्र) को सुशोभित करे । इन अतिशय तेजसम्पन्न, सूर्यरूप, दीप्तिमान् यश वाले मरुतों की, याजक प्रभूत हविष्यान्न प्रदान कर अर्चना करें ॥१॥

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥२॥

हे मरुतो ! आपके गण बलशाली, संसार के पोषणरूप जल देने वाले, अन्न बढ़ाने वाले, अश्वों को रथ में जोड़ने वाले और चतुर्दिक् गमनशील हैं। जब आप विद्युत् के साथ सम्मिलित होते हैं, तो तीनों

लोकों को प्रकाशित करते हैं और गर्जना करते हुए पृथ्वी पर चतुर्दिक् गमनशील जलराशि बरसाते हैं ॥२॥

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥

विद्युत् के सदृश तेजसम्पन्न, नेतृत्वकर्ता, आयुधयुक्त, द्युतिमान् , वेगवान् पर्वतों के प्रकंपक, वज्र-प्रक्षेपक, गर्जनशक्ति से युक्त तथा उग्र बल वाले मरुद्गण बारम्बार जल प्रदान करने के लिए आविर्भूत होते हैं ॥३॥

व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४॥

हे समर्थ, रुद्र पुत्र मरुतो ! आप रात्रि और दिन सतत परिभ्रमण करें । अन्तरिक्ष के सब लोकों में गमन करें । नौकाएँ जैसे नदियों में गमन करती हैं, वैसे आप विभिन्न प्रदेशों में गमन करें । हे शत्रुओं को कैंपाने वाले मरुतो ! हमारी हिंसा न करें ॥४॥

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५॥

हे मरुतो ! सूर्यदेव जिस प्रकार अपनी दीप्ति को बहुत दूर तक विस्तारित करते हैं । अश्व जिस प्रकार पर्वतों पर भी दूर तक विस्तारित होते हैं, उसी प्रकार आपकी महत्ता और शक्ति को स्तोतागण दूर तक विस्तारित करते हैं ॥५॥

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६॥

हे विधातारूप मरुतो ! आपका बल प्रखरता को प्राप्त हुआ है। भयंकर आँधी के समान आप वृक्षों को मरोड़ कर गिरा देते हैं । हे प्रसन्नचेता मरुतो ! आँख जैसे राहीं का पथ-प्रदर्शन करती है, वैसे आप हमारे मार्ग प्रदर्शक रूप में अनुकूल पथ से हमें चलाएँ ॥६॥

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७॥

हे मरुद्गणो ! आप जिसे ऋषि या राजा को सत्कार्य में प्रेरित करते हैं, वह किसी से पराजित नहीं होता, वह न हिसित होता है, न क्षीण होता है, न व्यथित होता है और न बाधित होता है । उसके ऐश्वर्य और संरक्षण सामर्थ्य कभी नष्ट नहीं होते ॥७॥

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।

पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८॥

नियुक्त संज्ञक अश्वों से युक्त, ग्राम विजेता, नेतृत्वकर्ता, जल धारक, मरुद्गण जब अर्यमा के समान वेग से गमन करते हैं, तो शब्दवान होते हैं। वे वृष्टि आदि से जल प्रवाहों को परिपूर्ण करते हैं और भूमि पर मधुर अन्नों को प्रवृद्ध करते हैं ॥८॥

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥

यह भूमि मरुद्गणों के लिए विस्तीर्ण पथ वाली हैं । द्युलोक भी वेगपूर्वक गमनशील मरुतों के लिए विस्तीर्ण पथ बनाते हैं । अन्तरिक्ष के सम्पूर्ण पथ भी मरुद्गणों के लिए विस्तृत होते हैं। मेघ भी मरुतों के लिए विस्तृत होकर शीघ वर्षा करने वाले होते हैं ॥९॥

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१०॥

हे मरुद्गणो ! आप, समान भारवाहक और द्युलोक के नियामक हैं । हे तेजस्वी नेतृत्वकर्ता मरुतो ! आप सूर्यदेव के उदित होने पर अत्यन्त हर्षित होते हैं । सतत गमनशील आपके ये अश्व शिथिल नहीं होते, आप तीनों लोकों के सभी मार्गों को पार कर जाते हैं ॥१०॥

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥

हे रथों में शोभायमान मरुतो ! आप कन्धों पर आयुध, पैरों में कड़े (कटक), वक्षस्थल पर रमणीक हार, भुजाओं पर अग्नि सदृश प्रकाशमान वज्र और शीर्ष पर स्वर्णिम शिरस्त्राण धारण किये हुए हैं ॥११॥

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥

हे पूजनीय मरुद्गणो ! गमन करते हुए आप उस दीप्तिमान् अबाधित आकाश को और तेजस्वी जल को प्रकम्पित करते हैं। आप अपने बलों को संगठित कर अति तेजस्विता से युक्त हों। आप जलवर्षण की इच्छा करने हुए भयंकर गर्जना द्वारा वृष्टि का उद्घोष करते हैं ॥१२॥

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥

हे विशिष्ट ज्ञानी मरुतो ! हम आपके द्वारा प्रदत्त अन्नों से युक्त हों, हम रथों एवं ऐश्वर्य के स्वामी हों । हे मरुतो ! हमें आकाश में वर्तमान नक्षत्रों के सदृश नष्ट न होने वाले सहस्रों धनों से हर्षित करें ॥१३॥

यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥

हे मरुद्गणो ! आप हमें स्पृहणीय धन और पुत्रादि प्रदान करें। आप सामगान करने वाले विप्र का रक्षण करते हैं। आप प्रजा का भरण-पोषण करने वाले राजा को अश्व, अन्न और ऐश्वर्य से उसे भली प्रकार पुष्ट करते हैं ॥१४॥

तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५॥

हे शीघ्र रक्षणशील मरुतो ! हम आपके उस धन-ऐश्वर्य की याचना करते हैं, जिसे हम सूर्य-रश्मियों के समान वितरित करें । हे मरुतो ! हमारे इन उत्तम स्तोत्रों को ग्रहण करें, जिसके बल से हम सौ वर्ष के पूर्ण जीवन का उपयोग करें ॥१५॥

# सूक्त ५५

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – जगती, १० त्रिष्टुप

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

प्रकृष्ट यजनीय, दीप्तिमान् आयुध वाले, वक्षस्थल पर रमणीक हार धारण करने वाले मरुद्गण महान् बलों को धारण करते हैं। ये उत्तम नियामक मरुद्गण वेगवान् अश्वों द्वारा गमन करते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याण युक्त कार्यों में इन ' रने वाले मरुतों के रथादि भी उके अनुगामी होते हैं ॥१॥

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२॥

हे मरुतो ! जैसा आप का ज्ञान है, उसी के अनुरूप आप स्वत: बल भी धारण करते हैं। भूमि को उर्वर बनाने को आपकी सामर्थ्य अति

महान् है और अतिशय प्रकाशमान हैं । आप अपने बल से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं। जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों में गतिशील मरुतों के रथ साधन भी उनके अनुगामी होते हैं ॥२॥

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥

ये मरुद्गण एक साथ उत्पन्न हुए और एक साथ जलवर्धक हैं, एक साथ बल-उत्पादक और नेतृत्वकर्ता हैं । अतिशय शोभा के लिए ये अत्यन्त प्रवर्धित होते हैं । सूर्य रश्मियों की भाँति विशिष्ट आभा से संयुक्त हैं। जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील मरुतों के रथादि भी इनके अनुगामी होते हैं ॥३॥

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

हे मरुतो ! आपकी विशिष्ट महत्ता स्तोत्रों आदि द्वारा विभूषित होती हैं। वह सूर्य के रूप सदृश दर्शनीय है । आप हमें अमरता प्रदान करें। जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि साधन भी आपके अनुगामी होते हैं ॥४॥

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।

न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥

हे जल सम्पन्न मरुतो ! आप अन्तरिक्ष से समुद्र के जल को प्रेरित करते हैं और जल वर्षण प्रारम्भ करते हैं। हे शत्रु संहारक मरुतो ! आपके निमित्त स्तुतियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील, आपके रथादि भी आपके अनुगामी होते हैं ॥५॥

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

हे मरुद्गणो ! जब आप बिन्दुदार (चिह्नित) अश्वों को अपने रथ से योजित करते हैं और स्वर्णमय कवच को धारण करते हैं, तब स्पर्धा रखने वाले सभी शत्रुओं को क्षत-विक्षत कर देते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि भी आपके अनुगामी होते हैं ॥६॥

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥

हे मरुतो ! पर्वत और नदियाँ आपके मार्ग को अवरुद्ध न करें । आप जहाँ जाने की इच्छा करें, वहाँ जाएँ। द्यावा-पृथिवी में सर्वत्र गमन करें

। जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि साधन आपके अनुगामी होते हैं ॥७॥

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥

हे सर्व निवासक मरुतो ! जो यज्ञादि अनुष्ठान पहले सम्पादित किये गये हैं, जो नूतन यज्ञ हो रहे हैं, उनके जो मन्त्रगान और स्तोत्रपाठ होते हैं, उन्हें आप जानने वाले हों । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील रथादि आपके अनुगामी होते हैं ॥८॥

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

हे मरुतो ! हमें सुखी बनायें, अपने क्रोध से नष्ट न करें, सुख प्रदान करें । हमारे मित्र भाव से युक्त स्तोत्रों से अवगत हों। जल-वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील रथादि साधन आपके अनुगामी होते हैं ॥९॥

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

हे स्तुत्य मरुद्गणो ! आप हमें पापों से विमुक्त करें और ऐश्वर्ययुक्त स्थान की ओर ले चले । हे यजनीय, मरुतो ! हमारे द्वारा प्रदत्त हव्यादि पदार्थ को ग्रहण करें, जिससे हम विविध ऐश्वर्यों के स्वामी हों ॥१०॥

# सूक्त ५६

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – वृहती, ३,७ सतोवृहती

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥

हे अग्ने ! आज आप दीप्तिमान् अलंकारों से विभूषित, शत्रु संहारक वीर मरुद्गणों और उनकी प्रजाओं को आहूत करें । हम देदीप्यमान द्युलोक से उनका आवाहन करते हैं ॥१॥

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः ॥२॥

हे अग्ने ! जिस प्रकार आप मरुद्गणों को हृदय से पूज्य मानते हैं, उसी प्रकार के हमारे सम्मानित भावों से वे हमारे निकट आगमन करें । ये जब हमारे हवनों के निकट आगमन करें, तब उन विकराल स्वरूप वाले मरुतों को आप हव्य द्वारा प्रवृद्ध करें ॥२॥

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३॥

पृथ्वी पर प्रभावित होकर व्यक्ति समर्थों के पास जाते हैं, उसी प्रकार हर्षित मरुतों की सेना हमारे निकट आ रही है । हे मरुतो ! आप वृषभ के सदृश सेचन में समर्थ (उत्पादन में समर्थ) और विशिष्ट सामर्थ्यवान् हैं ॥३॥

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४॥

दुर्धर्ष बैल के समान ये मरुद्गण अपने बल से सुगमतापूर्वक शत्रुओं का विनाश करते हैं। गर्जना करते हुए गमनशील ये मरुद्गण अपने आघात से मेघों को खण्ड-खण्ड कर वृष्टि करते हैं ॥४॥

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५॥

हे मरुतो ! आप उठें। स्तोत्रों से निश्चय ही समृद्ध हुए आप मरुद्गणों के सर्वश्रेष्ठ और अपूर्व बलों की हम वन्दना करते हैं ॥५॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६॥

हे मरुतो ! आप अपने रथ में अरुणिम मृगों को योजित करें अथवा रोहित वर्ण मृग को योजित करें अथवा वेगवान्, वहन कार्य में समर्थ अश्वों को भ्रमणशील धुरी को खींचने के लिए योजित करें ॥६॥

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७॥

हे मरुतो ! उन अरुणिम आभा से युक्त, बड़े शब्दकारी, दर्शनीय अश्वों को रथ से योजित कर इस प्रकार प्रेरित करें कि वे आपकी यात्राओं में विलम्ब न करें ॥७॥

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८॥

हम मरुतों के अन्नों से अभिपूरित, उस रथ का आह्वान करते हैं, जिसमें उत्तम रमणीय द्रव्यों की धारणकर्जी मरुतों की माता अधिष्ठित हैं ॥८॥

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।

यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९॥

हम मरुतों के रथ में शोभायमान, उस तेजस्वी और स्तुत्य संघ शक्ति का आह्वान करते हैं, जिसमें सुजाता और सौभाग्यवती कल्याणकारिणी देवी मरुद्गणों के साथ महत्ता को प्राप्त होती हैं ॥९॥

# सूक्त ५७

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – जगती, ७-८ त्रिष्टुप

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

इन्द्र के अनुचर, समान प्रीति वाले, स्वर्णिम रथों पर आरूढ़ होने वाले, रुद्रों के पुत्ररूप हे मरुतो ! आप हमारे इस उद्देश्यपूर्ण यज्ञ में आगमन करें । हम आपके निमित्त बुद्धिपूर्वक स्तवन करते हैं। हे तेजस्वी मरुतो ! तृषित और जल अभिलाषी गौतम के निमित्त आपने जैसे जल प्रवाह प्रदान किया, उसी प्रकार हमें भी अनुगृहीत करें ॥१॥

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२॥

हे मेधावी मरुतो ! आप कुठारों से युक्त, भालों से युक्त, उत्तम धनुषों से युक्त, बाणों से युक्त, तूणीर धारक, उत्तम अश्वों तथा रथों से युक्त और उत्तम आयुधों से युक्त हैं । आप हमारे कल्याण के निमित्त आगमन करें ॥२॥

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३॥

हे मरुतो ! आप अन्तरिक्ष में मेघों को कम्पित करें । उस हविदाता यजमान को धन प्रदान करें। आपके आगमन के भय से वन भी प्रकम्पित होते हैं । हे मातृरूप पृथ्वी के पुत्रो ! जल वृष्टि आदि शुभ कार्य के निमित्त बिन्दुदार (चिह्नित) मृगों को रथ से योजित कर जब आप उग्रता को धारण करते हैं, तो आपके क्रोध से पृथ्वी भी क्षुब्ध हो जाती है ॥३॥

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥

ये वीर मरुद्गण अत्यन्त तेजस्वी, वृष्टिजल के आच्छादक, जुड़वाँ के तुल्य (समानरूप वाले), उत्तम दर्शनीय और अति रूपवान् हैं । ये बभ्रु वर्ण और अरुणिम वर्ण अश्वों से युक्त, निष्पाप, शत्रुओं के

महाविनाशक हैं। अपनी महत्ता से ये आकाश के सदृश विस्तृत हैं ॥४॥

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥५॥

विपुल जलवर्षक, अलंकारों से विभूषित, दानशील, तेजोयुक्त मूर्तिमान्, अक्षय धन से संयुक्त, जन्म से सुजन्मा हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, पूजनीय दीप्तिमान् मरुद्गण अपने शुभ कार्यों से अमर कीर्ति पाते हैं ॥५॥

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६॥

हे मरुतो ! आपके कन्धों पर भाले रखे हैं। आपकी दोनों भुजाओं में शत्रु-संघर्षक बल सन्निहित है । शीर्षों पर शिरस्त्राण और रथों में सम्पूर्ण आयुध वर्तमान हैं। आपके शरीर विशिष्ट कान्ति से युक्त हैं ॥६॥

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७॥

हे मरुतो ! आप हमें गौओं से युक्त, अश्वों से युक्त, रथों से युक्त, उत्तम पुत्रों और स्वर्णादि से युक्त अन्नों को प्रदान करें । हे रुद्र पुत्रो ! हमारी समृद्धि बढ़ायें। आपकी दिव्य संरक्षण शक्ति का हम उपभोग करें ॥७॥

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

हे मरुतो ! आप हमें सुख से परिपूर्ण करें । आप नेतृत्वकर्ता, प्रभूत धन-सम्पन्न, अविनाशी, यज्ञ के ज्ञाता, वास्तविक ख्याति सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, युवा, प्रचण्ड बलवान् और सर्वत्र स्तुति किये जाने योग्य हैं ॥८॥

# सूक्त ५८

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – त्रिष्टुप

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१॥

हम निश्चय ही उन बल-सम्पन्न, स्तुत्य मरुद्गणों की स्तुति करें। वे मरुद्गण द्रुतगामी अश्वों के स्वामीं, वेगपूर्वक गमन करने वाले तथा अमृत के शासक हैं ॥१॥

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नृन् ॥२॥

हे ज्ञानी पुरुष ! उन तेजस्वी, बल-सम्पन्न, हाथ में कड़े धारण करने वाले, शत्रुओं को कैंपाने वाले, कुशल वीर, धन प्रदाता मरुतों की स्तुति करें। जो अत्यन्त सुखदायक हैं, महत्ता से परिपूर्ण हैं, अत्यन्त सामर्थ्यवान् और विपुल ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उनकी वन्दना करें ॥२॥

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३॥

ये सभी मरुद्गण जो वृष्टि को प्रेरित करते हैं, जल को वन करते हैं, आज हमारे अभिमुख आगमन करें। हे तरुण और ज्ञानी मरुतो ! आपके निमित्त जो अग्नि प्रज्वलित है; उससे हव्यादि का प्रीतिपूर्वक सेवन करें ॥३॥

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४॥

हे यजनीय मरुतो ! आप जनकल्याण के लिए यजमान को पुत्र प्राप्त कराते हैं, जो तेजस्वी, शत्रु संहारक और क्षमतावान् हों । हे मरुतो ! आपसे ही लोग मुष्टि युद्धों में बाहुबल प्राप्त करते हैं और आपसे ही लोग अश्वों के नियन्ता उत्तम वीर पुत्र प्राप्त करते हैं ॥४॥

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५॥

पहिये के आरों के सदृश सभी मरुद्गण एक समान दीखते हैं। ये अवर्णनीय मरुद्गण दिवस के सदृश अति महान् तेजों से संयुक्त

होकर एक समान प्रकट होते हैं। भूमि-पुत्र ये मरुद्गण समान मास में जन्मे हैं । अतिशय वेगवान् ये मरुद्गण सम्मिलित होकर स्वयं प्रवृत्त होकर वृष्टि आदि कार्यों का सम्पादन करते हैं ॥५॥

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥

हे मरुतो ! जब बिन्दुदार अश्वों और सुदृढ़ चक्रों से योजित रथों द्वारा आप आगमन करते हैं, तब जलराशि क्षुब्ध होकर बरसने लगती है । वनों का नाश होता है और सूर्य रश्मि संयुक्त वर्षणकारी मेघों से आकाश भी भीषण शब्द से गुंजायमान होता है ॥६॥

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७॥

मरुद्गणों के आगमन से पृथ्वी उर्वरता को प्राप्त होती हैं। पति द्वारा गर्भ की स्थापना करने के समान ये मरुद्गण अपने बल से वृष्टि जल को भूमि में प्रस्थापित करते हैं। ये रुद्रपुत्र मरुद्गण अपने द्रुतगामी अश्वों को रथ के अग्रभाग में नियोजित कर पराक्रमपूर्वक वृष्टि कार्य सम्पादित करते हैं ॥७॥

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

हे मरुतो ! हमें सुख से परिपूर्ण करें । आप नेतृत्वकर्ता, प्रभूत धन-सम्पन्न, अविनाशी, सत्य ज्ञाता, सत्ययशा, क्रान्तदर्शी, युवा, प्रचण्ड-बलवान् और सर्वत्र स्तुति किये जाने योग्य हैं ॥८॥

# सूक्त ५९

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – जगती, ८ त्रिष्टुप

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥

हे मरुतो ! अपने कल्याण के लिए विदाता यजमान यजन कर्म प्रारम्भ कर रहा है । हे याजक ! आप प्रकाशक द्युलोक की पूजा करें । हम पृथ्वी माता के लिए स्तोत्रों का गान करते हैं। ये मरुद्गण अपने अश्वों को प्रेरित करते हैं और अन्तरिक्ष में दूर तक गमन करते हैं। वे अपने तेज से मेघों को विद्युत् को विस्तारित करते हैं ॥१॥

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२॥

जैसे मनुष्यों से पूर्ण नौका नदी के मध्य कम्पित होकर गमन करती है, वैसे इन मरुद्गणों के बल से भयभीत पृथ्वी प्रकम्पित हो उठती है

। वे मरुद्गण दूर से दृश्यमान होने पर भी अपनी गतियों से जाने जाते हैं । ये नेतृत्वकर्ता मरुद्गण अन्तरिक्ष के मध्य अधिक हव्यादि ग्रहण करने के लिए यत्न करते हैं ॥२॥

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥

हे मरुतो ! आप गौओं के श्रृंग के सदृश शोभायमान शिरोभूषण धारण करते हैं । तमिस्रा दूर करने वाले सूर्य की रश्मियों के समान आप निज़ किरणें विकीर्ण करते हैं। आप द्रुतगामी अश्वों के सदृश वेगवान् और उत्तम आभा से युक्त होकर दर्शनीय हैं । आप भी मनुष्यों की भाँति यज्ञादि कर्मों के ज्ञाता हैं ॥३॥

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४॥

हे मरुतो ! आपकी महत्ता की समानता कौन कर सकता है? कौन आपके निमित्त स्तोत्र रचना कर सकता है ? कौन आपके समान पोषण सामर्थ्य से परिपूर्ण हुआ हैं ? हे मरुतो ! जब आप श्रेष्ठ हविदाता यजमान के हविष्यान्न से पूर्ण होते हैं, तब आप वृष्टिपात करके किरण के समान भूमि को प्रकम्पित करते हैं ॥४॥

अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५॥

ये मरुद्गण अश्वों के समान तेजस्वी हैं। ये बन्धु-बान्धवों से प्रीतिपूर्वक संयुक्त हैं। ये विशिष्ट योद्धा वीरों के समान वृष्टि आदि कार्य में प्रकृष्ट युद्ध करने वाले हैं। मनुष्यों के समान ही ये मरुद्गण भली प्रकार प्रवर्द्धमान हैं। वे वृष्टि आदि से सूर्य के तेज़ को भी क्षीण कर देते हैं ॥५॥

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥

उन मरुद्गणों में कोई ज्येष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं है और न कोई मध्यम श्रेणी का है । वे सभी समान तेज से युक्त हैं। वे मेघों का भेदन करने वाले हैं। वे सुजन्मा, मातृरूप पृथ्वी के पुत्र और मानवों के हितैषी हैं। वे दीप्तिमान् मरुद्गण हमारे अभिमुख आगमन करें ॥६॥

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७॥

हे मरुद्गणो ! आप पंक्तिबद्ध होकर उड़ने वाले पक्षियों के समान सम्मिलित होकर बलपूर्वक आकाश की सीमाओं तक और विस्तृत पर्वत शिखरों पर परिगमन करते हैं। आपके अश्व मेघों को खण्ड-खण्ड़ करके वृष्टि पात करते हैं । आपके ये कर्म सभी देवगण और मनुष्यगण जानते हैं ॥७॥

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥

द्युलोक और पृथ्वी हमारे पोषण के लिए संलग्न हों । विविध दान देने वाली देवी उषा हमारे कल्याण के निमित्त यत्न करें ।हे ऋषगण !ये रुद्रपुत्र मरुद्गण आपकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर जल की वर्षा करते हैं ॥८॥

# सूक्त ६०

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुतऽग्नामरुतौ । छंद – त्रिष्टुप, ७-८ जगती

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१॥

हम श्यावाश्व ऋषि इस यज्ञ में भली प्रकार रक्षा करने वाले अग्निदेव की स्तोत्रों से नमनपूर्वक स्तुति करते हैं। वे हम पर प्रसन्न होकर हमारे स्तुति आदि कर्मों को जानें । लक्ष्य तक पहुँचने वाले रथों के समान हम भी स्तोत्रों द्वारा अभीष्ट अन्नादि से अभिपूरित हों । प्रदक्षिणा के साथ हम मरुतों का स्तोत्रपाठ करके प्रवृद्ध हों ॥१॥

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२॥

हे रुद्रपुत्र मरुतो ! जब आप बिन्दुदार अश्वों से युक्त, प्रसिद्ध और सुखदायक रथों में अधिष्ठित होते हैं, तो आपके भय से वन भी कम्पित होते हैं । मेघों के कम्पन के साथ पृथ्वीं भी कम्पायमान होती है ॥२॥

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३॥

हे मरुतो ! आपके द्वारा किये गये भीषण शब्द से अत्यन्त पुराने और महान् पर्वत भी भययुक्त होकर कम्पित हो उठते हैं । द्युलोक का शिखर भी प्रकम्पित होता है । हे मरुतो ! विशिष्ट आयुधों को धारण कर जब आप क्रीड़ा करते हैं, तो मेघों के समान सम्मिलित होकर विशेष दौड़ लगाते हैं ॥३॥

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४॥

धनवान् वर जैसे अपने शरीर को अलंकारों से सुसज्जित करते हैं, वैसे ये मरुद्गण अपनी शोभा के लिए स्वर्ण अलंकारों और उदक से अपने शरीरों को विभूषित करते हैं। ये कल्याणभेद और बलशाली मरुद्गण रथ में संयुक्त बैठकर अपने शरीरों में तेज को धारण करते हैं ॥४॥

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥

इन मरुद्गणों में कोई ज्येष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं हैं । ये परस्पर भ्रातृ भाव से संयुक्त रहते हैं । ये सौभाग्य प्राप्ति के लिए सतत प्रवृद्ध होते हैं । नित्य तरुण और उत्तम-कर्मा मरुद्गणों के पिता रुद्र और मातृ स्वरूपा दोहन योग्या पृथ्वी हैं, जो मरुतों के लिए उत्तम दिनों की निर्मात्री हैं ॥५॥

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

हे सौभाग्यशाली मरुतो ! आप सब द्युलोक के उत्कृष्ट भाग, मध्यम भाग या अधोभाग में अवस्थित होते हैं । हे शत्रु-संहारक मरुतो ( रुद्र रूप मरुतो) ! आप इन तीनों भागों से हमारी रक्षा के निमित्त आगमन करें । हे अग्निदेव ! हमारी आहुतियों को आप जानें ॥६॥

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥

हे सर्वज्ञ मरुतो ! आप और अग्निदेव द्युलोक के उच्चतम स्थान से अधों पर विराजित होकर इसे सोमयाग में आगमन करें । सोमपान

से हर्षित होकर हमारे शत्रुओं को प्रकम्पित करें, उनकी हिंसा करें और सोमयाग वाले यज्ञमान के लिए वाञ्छित धन प्रदान करें ॥७॥

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८॥

हे सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर अत्यन्त शोभनीय, तेजों से युक्त, गणों का आश्रय लेकर रहने वाले (समूह में रहने वाले) , पवित्रकर्ता, सबके तृप्तिकारक, आयुवर्द्धक मरुद्गणों के साथ सोमपान कर प्रमुदित हों ॥८॥

# सूक्त ६१

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – मरुत ५-८ तरंत महिषी शशीयसी, ९ वैददश्वि: पुरमील्ह:, १० वैददश्विसतरन्त: १७-१९ दाभ्र्यो रथविति: । छंद – गायत्री, ३ निवृत, ५ अनुष्टुप सतोवृहती

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय ।
परमस्याः परावतः ॥१॥

हे श्रेष्ठ नेतृत्व कर्ता ! आप सब कौन हैं ? जो अतिशय सुदूरवर्ती आकाश प्रदेशों से यहाँ आगमन करते हैं ॥१॥

क्व वोऽश्वाः क्वाभीशवः कथं शेक कथा यय ।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२॥

हे मरुतो ! आपके अश्व कहाँ हैं ? उनके लगाम कहाँ हैं? कैसे गमन में समर्थ होते हैं? कैसे गमन करते हैं ? उनकी पीठ पर की जीन और नथुने में डाली जाने वाली रस्सी कहाँ स्थित है ? ॥२॥

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः ।
पुत्रकृथे न जनयः ॥३॥

अश्व नियामक मरुद्गण जब इन घोड़ों की जाँघों पर चाबुक लगाते हैं, तो घोड़े अपनी जाँघों को प्रसूति के समय नारियों की भाँति फैला लेते (गतिशील हो जाते हैं ॥३॥

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः ।
अग्नितपो यथासथ ॥४॥

हे वीर मरुद्गणो ! आप मनुष्यों के हितैषी, कल्याणरूप जन्म वाले, अग्नि में तपाये गये के सदृश तेजोमय हैं। आप जैसे स्थित हैं, वैसे ही हमारे अभिमुख आगमन करें ॥४॥

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥

श्यावाश्व के द्वारा स्तुत उन वीरों (मरुद्गणों) के अभिवादन के लिए उन तरन्त महिषी शशीयसी देवी ने अपनी दोनों भुजाओं को फैलाया । उस देवी ने (मुझ श्यावाश्व को) अश्व, गौ और सौ भेड़े (अवि) प्रदान कीं ॥५॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।
अदेवत्रादराधसः ॥६॥

जो पुरुष देव की उपासना नहीं करता है, धनादि दान नहीं करता है, उसकी अपेक्षा स्त्री शशीयसी सब प्रकार से श्रेष्ठ है ॥६॥

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥७॥

वे शशीयसी देवी प्रताड़ितों को जानती हैं, प्यासों को भी जानती हैं, धन की कामना वालों को जानती हैं और वे चिरन्तन देव पूजा में अपने चित्त को लगाती हैं ॥७॥

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥८॥

उन शशीयसी के अर्धांग पुरुष तरत की स्तुति करके भी हम कहते हैं कि स्तुति ठीक प्रकार नहीं हुई, क्योंकि दान के क्रम में वे सदैव समान हैं ॥८॥

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।

वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥९॥

सर्वदा प्रमुदित रहने वाली युवती शशीयसी ने श्यावाश्व का मार्ग प्रदर्शित किया था। उनके रोहित वर्णवाले अश्व उन्हें बहुप्रशंसित, महान् यशस्वी विप्र के मार्ग की ओर वहन करते हैं ॥९॥

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् ।
तरन्त इव मंहना ॥१०॥

विददश्व के पुत्र ने भी हमें तरन्त के समान सौं गाय और तेजस्वी धन प्रदान किया ॥१०॥

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु ।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११॥

वे मरुद्गण द्रुतगामी अश्वों पर अधिष्ठित होकर अत्यन्त हर्षप्रद मधुर सोमपान करने के निमित्त आते हैं। और हमें विपुल अन्न प्रदान करते हैं ॥११॥

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥१२॥

जिन मरुतों की शोभा से द्यावा-पृथिवी भी परिव्याप्त होती हैं । वे मरुद्गण ऊपर आकाश में प्रकाशमान सूर्यदेव के सदृश रथों में विशिष्ट आभा विस्तारित करते हैं ॥१२॥

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः ।
शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१३॥

यह मरुद्गणों का समुदाय सदा तरुण और अनिन्दनीय हैं । ये तेजस्वी रथ में विराजित होकर वृष्टि आदि शुभ कार्य के निमित्त अबाधगति से गमन करते हैं ॥१३॥

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।
ऋतजाता अरेपसः ॥१४॥

यज्ञादि कर्मों से उत्पन्न हुए ये मरुद्गण शत्रुओं को कँपाने वाले और पाप रहित हैं। ये जहाँ हर्षित होते हैं, उस स्थान को कौन जानता है ? ॥१४॥

यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५॥

हे स्तुतियोग्य मरुतो ! आप मनुष्यों के प्रकृष्ट नियन्ता हैं । उनके बुद्धिपूर्वक किये गये आवाहन को सुनकर आप शीघ्र आगमन करते हैं ॥१५॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६॥

विविध प्रकाशक धनों के स्वामी, शत्रुसंहारक, पूजनीय हे मरुतो ! हमें वाञ्छित धनादि प्रदान करें ॥१६॥

एतं मे स्तोमममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥१७॥

हे रात्रिदेवि ! हमारे इन स्तोत्ररूप वाणियों को उन मरुद्गणों के निमित्त उसी प्रकार वहन करें, जैसे कोई रथी अपने गन्तव्य स्थान तक जाते हैं ॥१७॥

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥१८॥

हे रात्रि देवि ! रथवीति द्वारा सम्पादित सोमयाग में हमारी कामनाएँ विफल नहीं हुईं, ऐसे मेरे वचन उनसे कहें ॥१८॥

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु ।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥

यह धनवान् रथवीति गोमती नदी के किनारे निवास करते हैं और पर्वतों में भी उनका निवास है ॥१९॥

# सूक्त ६२

ऋषि: श्रुत विदारात्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – त्रिष्टुप,

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१॥

हे मित्रावरुण ! आप सबके अटल आश्रय स्थान हैं, जहाँ सूर्यदेव के अश्वों (रश्मियों) को विमुक्त किया जाता हैं । सूर्यदेव का ऊत (सत्य) रूप, ऋत (यज्ञ) से हुँका हुआ है । वहाँ सहस्र संख्यक अश्व (रश्मियाँ) स्थित हैं। उन सुन्दर रूपवान् देवों के श्रेष्ठ सौन्दर्य का दर्शन हमने किया है ॥१॥

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥२॥

हे मित्र ! हे वरुण ! आप दोनों का महत्त्व बहुत विख्यात है । आप में से एक सतत परिभ्रमणशील सूर्यदेव के साथ दिन में स्थावर का रस

दोहन करते हैं । आप स्वयं भ्रमणशील सूर्यदेव की सम्पूर्ण दीप्तियों को प्रवर्धित करते हैं। आपमें से एक का चक्र सर्वत्र गतिशील रहता है ॥२॥

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण ! आप अपने तेजों से द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं। हे शीघ्र दानकर्तादव !. आप ओषधियों को प्रवर्धित करते हैं और गौओं को पुष्ट करते हैं। आपने हमारे निमित्त वृष्टि को प्रवाहित किया है ॥३॥

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४॥

हे मित्रावरुणदेवो ! उत्तम प्रकार से प्रयोजित अश्व आप दोनों को वहन करें । सारथी लगाम से उन्हें नियन्त्रित करें । यज्ञ में घृतधारा के प्रवाहित होने के समान आपके द्वारा द्युलोक से नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥४॥

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥

हे बलसम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों शरीर की कान्ति को और भी प्रवर्धित करते हैं । यजुर्वेद के मंत्रों से जैसे यज्ञों की रक्षा होती हैं, उसी प्रकार आप पृथ्वी की रक्षा करें । हे अन्नवान् ! आप दोनों रथ पर विराजित होकर हमारे यज्ञ स्थान के मध्य आकर अधिष्ठित हों ॥५॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६॥

है मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों सिद्धहस्त, अदृश्य रक्षक और हिंसा न करने वाले हैं। हे तेजस्वीदेवो ! आप दोनों जिस उत्तमकर्मा यजमान के यज्ञों में उसकी रक्षा करते हैं, उसे धनादि से पूर्ण सहस्र स्तंभोंयुक्त गृह भी प्रदान करते हैं ॥६॥

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥

इन मित्र और वरुणदेवों का रथ स्वर्णमय है, इनके स्तम्भ भी स्वर्णिम हैं । इससे यह रथ आकाश में विद्युत् के सदृश विशिष्ट आभा विकीर्ण करता है । इस (रथ) के कल्याणकारी स्थान में अवस्थित यह

रस पात्र, रस से भरा है। हम इस रथ में रखे मधुर रस को प्राप्त करें ॥७॥

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप उषा के प्रकाशित होने तथा सूर्यदेव के उदित होने पर स्वर्णिम स्तम्भों वाले रथ पर आरोहण करते हैं और उस रथं से आप पृथ्वी और पृथ्वी के प्राणियों को देखते हैं ॥८॥

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९॥

हे उत्तम दानशील, लोकरक्षक मित्र और वरुणदेवो ! आपका जो घर अत्यन्त विशाल, आघातों से मुक्त और अखण्डित है, उसी घर से हमारी रक्षा करें। हम अभीष्ट धन प्राप्त करें और शत्रुजेता हों ॥९॥

# सूक्त ६३

ऋषि: अर्चनाना आत्रेया
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – जगती

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१॥

हे जल-रक्षक, सत्य-धर्मपालक मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों हमारे यज्ञ में आने के लिए परम आकाश में रथ पर अधिष्ठित होते हैं। आप दोनों इस यज्ञ में जिस यजमान की रक्षा करते हैं, उसे आकाश से मधुर जल की वृष्टि कर पुष्ट करते हैं ॥१॥

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२॥

हे स्वर्ग के द्रष्टा मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों इस लोक के सम्राट् हैं। आप यज्ञ में दीप्तिमान् होते हैं। हम आप दोनों से अनुकूल वृष्टि,

ऐश्वर्य और अमरता की याचना करते हैं। आपकी प्रकाशमान किरणे आकाश और पृथ्वी में विचरण करती हैं ॥२॥

समाजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों अत्यन्त प्रकाशमान, उग्र बल-सम्पन्न और वृष्टिकर्ता हैं। आप द्युलोक और पृथ्वीलोक के अधिपति और विशिष्ट द्रष्टारूप हैं । आप विलक्षण मेघों के साथ गर्जनशील होकर अधिष्ठित हैं । अपने भयंकर बल से कुशलतापूर्वक आप द्युलोक से वृष्टि करते हैं ॥३॥

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की माया (सामर्थ्य) द्युलोक में आश्रित है, जिससे सूर्यदेव का विलक्षण आयुधरूप प्रकाश सर्वत्र विचरता हैं । तब आप दोनों उन सूर्यदेव को वर्षणशील मेघों से आच्छादित करते हैं । हे पर्जन्य ! इन देवों से प्रेरित होकर आपसे मधुर जल राशि क्षरित होती हैं ॥४॥

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।

रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! युद्धों में जाने की अभिलाषा वाले वीर जैसे अपने रथ को सुसज्जित करते हैं, उसी प्रकार मरुद्गण आपसे प्रेरित होकर वृष्टि के लिए सुखकर रथ को नियोजित करते हैं। आकाश-निवासक वे मेरुद्गण विविध लोकों में वृष्टि के लिए विचरते हैं । हे अत्यन्त प्रकाशक देवो ! मरुतों के सहयोग से आप उत्तम जल वृष्टि से हमें सिञ्चित करें ॥५॥

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आपके द्वारा मेघ अन्नोत्पादक, तेजोमयी, विचित्र गर्जनायुक्त वाणी कहता है । ये मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से मेघों को भली प्रकार विस्तारित करते हैं। आप दोनों अरुणिम वर्ण और निर्मल आकाश से वृष्टि करते हैं ॥६॥

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७॥

हे मेधावान् मित्रावरुण देवो ! आप दोनों जगत्-कल्याणकारी वृष्टि आदि कर्मों से यज्ञादि व्रतों की रक्षा करते हैं। जल वर्षक मेघों की

सामर्थ्य द्वारा आप यज्ञों से सम्पूर्ण लोकों को विशेष प्रकाशित करते हैं। आप पूजनीय और वेगवान् सूर्यदेव को द्युलोक में स्थापित करते हैं ॥७॥

# सूक्त ६४

ऋषि: अर्चनाना आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – अनुष्टुप, ७ पंक्ति

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१॥

जिस प्रकार गौएँ अपने गोचर स्थान में जाती हैं, उसी प्रकार सर्वत्र गमनशील, मित्र और वरुणदेवों को हम ऋचाओं से आवाहित करते हैं। ये मित्र और वरुणदेव अपनी सामर्थ्य से सर्वत्र गमन करते हैं। ये स्वर्णधन देने वाले और शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं ॥१॥

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! म उत्साहपूर्ण मन से आपका पूजन करते हैं । हम पूजकों को आप दोनों हाथ फेलाकर (उदारतापूर्वक) प्रशंसित

सुख प्रदान करें । हम आपकी प्रशस्ति का गान सभी लोकों में करें ॥२॥

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३॥

हम मित्रदेव के पथों का अनुगमन करते हुए निश्चित गति प्राप्त करें । हमारे प्रिय और अहिंसक मित्रदेव के सुख हमें प्राप्त हों ॥३॥

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम आपके उस धन को धारण करें, जो धनिक स्तोताओं के घर में परस्पर स्पर्धा का कारण बनता हो ॥४॥

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों उत्तम तेजों से युक्त होकर हमारे घर आगमन करें । आप निश्चित ही आये और धनिक मित्रों को समृद्धियुक्त करें ॥५॥

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप यज्ञों में जो अति व्यापक बल धारण करते हैं, उस बल से हमारे अन्न, धन और कल्याण में वृद्धि करें ॥६॥

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥७॥

हे मित्र और वरुणदेवों ! आप नेतृत्वकर्ता और पूजनीय हैं । उषाकाल में स्वर्णिम रश्मियों के प्रकाशित होने पर उपासकों को दोनों हाथों में धनादि धारण कराते हैं । यज्ञ में हमारे द्वारा अभिषुत सोम को ग्रहण करने के लिए आप शकटरूपी हाथों और चक्ररूपी पैरों वाले रथों से दौड़ते हुए आयें ॥७॥

# सूक्त ६५

ऋषि: रातहव्य  आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – अनुष्टुप, ६ पंक्ति

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१॥

जो स्तोता देवों के मध्य में इन मित्र और वरुणदेवों की स्तुति जानता है और उत्तम कर्म करते हुए स्तुतियाँ करता है, ये देवगण उनकी स्तुतियाँ ग्रहण करते हैं। वे स्तोतागण हमें उपदेश करें ॥१॥

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥२॥

ये मित्र और वरुणदेव प्रभूत तेज-सम्पन्न, अधिष्ठातारूप और दूरस्थ प्रदेशों से भी आवाहन को सुनने वाले हैं । ये सत्यशील यजमानों के अधिपति, यज्ञ को बढ़ाने वाले और प्रत्येक मनुष्य में सत्य के स्थापनकर्ता हैं ॥२॥

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३॥

पुरातन, उत्तम ज्ञान सम्पन्न हे मित्रावरुणदेवो ! हम आपके सम्मुख उपस्थित होकर अपनी रक्षा के लिए आपकी स्तुतियाँ करते हैं। उत्तम अश्वों के स्वामी हम अन्नों के दान के लिए आपकी प्रकृष्ट स्तुति करते हैं ॥३॥

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४॥

मित्रदेव पापी स्तोता को भी संरक्षण के लिए महान् आश्रय प्राप्ति का उपाय बताते हैं । हिंसक भक्त के लिए भी मित्रदेव की उत्तम बुद्धि रहती है ॥४॥

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥५॥

हम मित्रदेव के अत्यन्त व्यापक संरक्षण में स्थित हों । वरुणदेव के सन्तानरूप हम लोग आप से रक्षित होकर तथा निष्पाप होकर संयुक्तरूप से रहें ॥५॥

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६॥

हे मित्रावरुण देवो ! जो मनुष्य आप दोनों का स्तवन करते हैं, उन्हें आप उत्तम मार्ग से ले जाते हैं। हे ऐश्वर्यशालीदेवो ! हम यजमानों का त्याग न करें, ऋषियों की संतानों का त्याग न करें । सोमदेव यज्ञादि कार्य में हमारी रक्षा करें ॥६॥

# सूक्त ६६

ऋषि: रातहव्य  आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – अनुष्टुप,

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१॥

हे ज्ञान-सम्पन्न मनुष्य ! आप शत्रुओं के हिंसक और उत्तम कर्म करने वाले दोनों देवों मित्र और वरुण को आवाहित करें । उदकरूप वाले, अन्न-उत्पादक, महान् वरुणदेव के लिए जल प्रदान करें ॥१॥

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२॥

आप दोनों देवों का बल सज्जनों के लिए अहिंसक और असुरों के लिए विनाशक है । आप दोनों सम्पूर्ण बलों के अधिष्ठाता हैं। जैसे मनुष्यों में कर्म-सामर्थ्य और सूर्यदेव में प्रकाश स्थापित होकर

दर्शनीय होता है, उसी प्रकार आप में बल स्थापित होकर दर्शनीय होता है ॥२॥

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों रातहव्ये (हव्य प्रदाता) की उत्तम स्तुतियों से स्तुत होते हैं और आवाहित होने पर अत्यन्त विस्तृत मार्गों से भी गमन करते हैं ॥३॥

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४॥

हे अद्भुत कार्य करने वाले, बेल-सम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! हम कुशल साधकों की स्तुतियों से आप दोनों प्रशंसित होते हैं । आप दोनों अनुकूल मन से यजमानों के स्तोत्रों को जानें ॥४॥

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रवएष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५॥

हे पृथिवीदेवि ! हम ऋषियों की, अन्न की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए आप विपुल जल-राशि से परिपूर्ण हैं । ये मित्र और वरुणदेव अपने गमनशील साधनों से वह विपुल जल-वर्षण करते हैं ॥५॥

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६॥

हे दूरद्रष्टा मित्र और वरुणदेवों ! हम स्तोताजन आप दोनों का आवाहन करते हैं, जिससे हम आपके अत्यन्त विस्तीर्ण और बहुतों द्वारा संरक्षित राज्य में आवागमन करें ॥६॥

## सूक्त ६७

ऋषि: यजत आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – अनुष्टुप,

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥१॥

हे दीप्तिमान् आदित्य पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमादेवो ! आप निश्चय ही अपराजेय, पूजनीय और अत्यन्त महान् बल को धारण करते हैं ॥१॥

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! जब आप अत्यन्त रमणीय यज्ञभूमि में आकर अधिष्ठित होते हैं, तब हमें सुख प्रदान करें ॥२॥

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३॥

सर्वज्ञाता वरुण, मित्र और अर्यमा-ये सभी देव हमारे यज्ञों में अपने स्थान के अनुरूप सुशोभित होते हैं और हिंसकों से मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥३॥

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४॥

वे देवगण (वरुण, मित्र और अर्यमा) सत्यस्वरूपवान्, यज्ञ-व्रतावलम्बी और यज्ञ-रक्षक हैं । वे प्रत्येक यजमान । को सत्पथ पर प्रेरित करने वाले और उत्तम-दानशील हैं । वे वरुणादि देवगण पापी स्तोताओं को भी (शुद्ध करके) ऐश्वर्य देने वाले हैं ॥४॥

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों के मध्य ऐसे कौन हैं, जो मनुष्यों में स्तुत नहीं होते ? हमारी बुद्धि आपकी स्तुति में नियोजित होती है। अत्रि वंशजों की बुद्धि भी अपकी स्तुति में नियोजित होती है ॥५॥

# सूक्त ६८

ऋषि: यजत आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – गायत्री

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१॥

हे मंत्विजो ! आप मित्र और वरुणदेव हेतु तेज ध्वनि से गायन करें । महानतायुक्त, क्षात्रबल से सम्पन्न वे दोनों यज्ञ-स्थल पर विस्तृत स्तोत्रगान-श्रवण हेतु उपस्थित हों ॥१॥

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२॥

तेजस्विता के उत्पत्ति केन्द्र, मित्र और वरुण दोनों अधिपतियों की देवगणों के बीच प्रशंसा होती है ॥२॥

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।

महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥

देवताओं में प्रसिद्ध, पराक्रमी, हे मित्र और वरुणदेवो ! आप हमें पृथ्वी एवं द्युलोक की अपार वैभव प्रदान करें, हम आपका स्तवन करते हैं ॥३॥

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥४॥

सत्य से सत्य का पालन करने वाले अभीष्ट बल प्राप्त करते हैं । द्रोह न करने वाले मित्र और वरुणदेव अपनी सामर्थ्य से वृद्धि पाते हैं ॥४॥

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥५॥

वर्षा के लिए जिनकी वंदना की जाती हैं, नियमानुसार सब कुछ प्राप्त करने वाले, दान की प्रवृत्ति वाले, अन्नों के अधिपति वे मित्र और वरुणदेव श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हैं ॥५॥

# सूक्त ६९

ऋषि: उरुचक्रिरात्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद – त्रिष्टुप

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥१॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप तीन विशिष्ट तेजों, तीन द्युलोकों और तीन अन्तरिक्ष लोकों को धारण करते हैं । आप दोनों, क्षत्रियों की सामर्थ्य को प्रवर्द्धत करते हैं और अक्षय कर्मों की रक्षा करते हैं ॥१॥

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की अनुकम्पा से गौएँ दुधारू होती हैं और नदियाँ मधुर जल का दोहन करती हैं । आप दोनों के साथ संयुक्त होकर जल-वर्षक, उदक-धारक और दीप्तिमान् तीन

देव (अग्नि, वायु और आदित्य), तीन लोकों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) के अधिपति रूप में स्थित हैं ॥२॥

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३॥

हम प्रात: सवन में देवी अदिति का आवाहन करते हैं और माध्यन्दिन सवन में सूर्यदेव का स्तवन करते हैं । हे मित्रावरुण देवो !हम धन-प्राप्ति के लिए, पुत्र और पौत्रों के कल्याण के लिए यज्ञ में आपकी स्तुति करते हैं ॥३॥

या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४॥

हे आदित्य-पुत्र मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों द्युलोक और तेजस्वी पृथ्वीलोक को धारण करने वाले हैं । आप दोनों के अटल नियमों की अवहेलना इन्द्रादि अमरदेव भी नहीं करते हैं ॥४॥

# सूक्त ७०

ऋषि: उरुचक्रिरात्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद –गायत्री

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों के पास प्रचुर मात्रा में उपयोगी साधन उपलब्ध हैं । आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की अनुकूलता हमें सदैव प्राप्त होती रहे ॥१॥

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे ।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥२॥

द्वेष न करने वाले आप दोनों (मित्र और वरुण) की हम भली-भाँति वन्दना करते हैं। हमें आपकी मित्रता का लाभ मिले तथा धन-धाम की प्राप्ति हो ॥२॥

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥३॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! श्रेष्ठ संरक्षक के रूप में अपने साधनों से हमारी संरक्षण एवं पालन करें । उस सामर्थ्य के बल पर हम भी शत्रुओं को पराजित कर सके ॥३॥

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः ।
मा शेषसा मा तनसा ॥४॥

हे अद्भुतकर्मा मित्र और वरुणदेवो ! हम अपने शरीर द्वारा किसी अन्य के धन का उपभोग न करें। अपने सम्बन्धियों द्वारा भी किसी अन्य के धन का उपभोग न करें ॥४॥

# सूक्त ७१

ऋषि: बाहुवृक्त आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद –गायत्री

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा ।
उपेमं चारुमध्वरम् ॥१॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों शत्रु-हिंसक और शत्रु-नाशक हैं। आप दोनों हमारे अत्यन्त निर्मल यज्ञ में पधारने की कृपा करें ॥१॥

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

हे प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! आप सम्पूर्ण विश्व के प्रशासक हैं और सब पर प्रभुत्व रखने वाले हैं । आप हमारी अभिलषित बुद्धि को तृप्त करें ॥२॥

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥३॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम अभिषुत-सोम युक्त हव्यादि देने वाले हैं। आप हमारे द्वारा अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे पास आगमन करें ॥३॥

## सूक्त ७२

ऋषि: बाहुवृक्त आत्रेय:
देवता – मित्रावरुणौ । छंद –गायत्री

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥१॥

अत्रि वंशजों की तरह हम भी मित्र और वरुणदेवों का स्तुतियों द्वारा आवाहन करते हैं । हे देवो ! सोमपान के निमित्त कुशाओं पर अधिष्ठित हों ॥१॥

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥२॥

हे शत्रुविनाशक मित्र और वरुणदेवो ! आप अपने धर्मयुक्त नियमों के कारण अटल-आश्रय में स्थित हैं । आप सोमपान के निमित्त कुश के आसन पर अधिष्ठित हों ॥२॥

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।

नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥३॥

हे मित्रावरुणो !हमारे यज्ञ को स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करें । आप सोमपान के निमित्त कुशाओं पर आसीन हों ॥३॥

# सूक्त ७३

ऋषि: पौर आत्रेय:
देवता – आश्विनौ । छंद – अनुष्टुप

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१॥

हे अनेक स्थानों (यज्ञो) में भोज्य पदार्थ पाने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दूरस्थ देश में हो अथवा निकटवर्ती बहुत प्रदेशों में हों अथवा अन्तरिक्ष में हों, आप जहाँ भी हों, उन स्थानों से हमारे पास पधारें ॥१॥

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥

इन अश्विनीकुमारों का सम्बन्ध अनेक यजमानों से है, जो विविध रूपों को धारण करने वाले और वरणीय हैं । ये अबाधित गति वाले और

सर्वोत्कृष्ट बलों वाले हैं। इन्हें उत्तम आहुतियों के निमित्त हम आवाहित करते हैं ॥२॥

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने रथ के एक चक्र को सूर्य की शोभा बढ़ाने के लिए नियमित किया तथा अन्य (दूसरे) चक्र से मनुष्यों के युगों (काल) को प्रकट करने के लिए आप सब ओर विचरते हैं ॥३॥

तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४॥

हे सर्वत्र व्याप्त अश्विनीकुमारो !हम जिन स्तोत्रों द्वारा आप दोनों के अनुकूल स्तुति करते हैं, वे भली प्रकार सम्पादित हों । हे निष्पाप और विभिन्न कर्मों के लिए प्रसिद्ध देवो !आप हमारे साथ बन्धुभाव में ही संयुक्त हों ॥४॥

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों के रथ पर सूर्या (उषा) आरोहित होती हैं, तब अत्यन्त दीप्त अरुणिम रश्मियाँ आपको चारों ओर से घेर लेती हैं ॥५॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६॥

हे नेतृत्ववान् अश्विनीकुमारो ! अत्रि ऋषि ने जब आप दोनों की स्तुति करते हुए अग्नि के सुखप्रद रूप को जाना था, तब उन्होंने कृतज्ञ चित्त से आपका स्मरण किया था ॥६॥

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥७॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप जब गमन करते हैं, तो आपके सुदृढ़, ऊँचे, सतत गमनशील रथ का शब्द सुनायी पड़ता है, तब अत्रि ऋषि अपने कार्यों से आप दोनों को आकृष्ट करते हैं ॥७॥

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥

हे मधु मिश्रित करने वाले रुद्रपुत्र अश्विनीकुमारो ! हमारी सुमधुर स्तुतियाँ आपमें मधुरता का सिंचन करती हैं। आप दोनों अन्तरिक्ष की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं और पके हुए हविष्यान्नों से परिपूर्ण होते हैं ॥८॥

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! विद्वज्जन आप दोनों को अत्यन्त सुखदायक बताते हैं, वह (कथन) निश्चय ही सत्य है। यज्ञ में आगमन के निमित्त आप आवाहित होते हैं, अतएव यहाँ आगमन कर हमारे निमित्त सुखप्रदायक हों ॥९॥

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥१०॥

रथों के समान निर्मित ये मन्त्रादि स्तोत्र अश्विनीकुमारों के निमित्त विरचित किये गये हैं। ये स्तोत्र उनके निमित्त सुखकारी और प्रीतिवर्द्धक हों। नमनयुक्त स्तोत्र भी उनके निमित्त निवेदित हैं ॥१०॥

# सूक्त ७४

ऋषि: पौर आत्रेय:
देवता – आश्विनौ । छंद – अनुष्टुप, ८ निचृत

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१॥

हे उत्कृष्ट मन-सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों द्युलोक से आगमन कर यज्ञ-भूमि पर स्थित हों । हे धनवर्षक देवो ! आप अत्रि ऋषि के उन स्तोत्रों का श्रवण करें, जो आपके निमित्त निवेदित किये गये हैं ॥१॥

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥

हे असत्यरहित दीप्तिमान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों कहाँ हैं? द्युलोक में किस स्थान में आप सुने जाते हैं ? किस यजमान के गृह

आप आगमन करते हैं ? तथा किस स्तोता की स्तुतियों के साथ आप संयुक्त होते हैं ?॥२॥

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप किस यजमान के लिए गमन करते हैं? किसके पास संयुक्त होते हैं ? किसके अभिमुख गमन करने के लिए रथ नियोजित करते हैं ? किसके स्तोत्रों से प्रसन्नचित्त होते हैं? हम आप दोनों की प्राप्ति की कामना करते हैं ॥३॥

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप पौर ष के लिए जलयुक्त मेघों को प्रेरित करें । जैसे वन में व्याध सिंह के प्रताड़ित करता है, वैसे आप इन मेघों को प्रताड़ित करें ॥४॥

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥५॥

हे अश्विनीकमारो ! आपने ज्ञराजीर्ण हुए च्यवन ऋषि की कुरूपता को कवच के सदृश उतार दिया और उन्हें पुनः युवक रूप बना दिया, तब वे वधू के द्वारा कामना योग्य सुन्दर रूप से युक्त हुए ॥५॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके स्तोतागण इस यज्ञ-स्थल में विद्यमान हैं। इस समृद्धि के लिए आपके दृष्टि क्षेत्र में अविस्थत हों । हे सेनारूप धनों से युक्त अश्विनीकुमारो ! हमारी पुकार सुनें । अपने संरक्षण साधनों के साथ यहाँ आगमन करें ॥६॥

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७॥

हे ज्ञानियों द्वारा वन्दनीय और विपुल सेनारूप धन वाले अश्विनीकुमारो ! अनेकों प्रजाओं में से कौन ज्ञानी आपको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता है ? कौन यजमान आपको यज्ञों द्वारा सम्यक् रूप से तृप्त करता है? ॥७॥

आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! अन्य देवों के रथों के मध्य सर्वाधिक वेगवान आपका रथ इधर आगमन करे । मानवों में हमारी कामना करने वाला, अनेकों शत्रुओं का संहार और यजमानों द्वारा प्रशंसित यह रथ इधर आगमन करे ॥८॥

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥

हे मधुयुक्त अश्विनीकुमारो ! आपके निमित्त निवेदित स्तोत्र हमारे लिए सुखदायक हों । हे विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न देवो ! श्येन पक्षी के समान वेगवान् अश्वों से हमारे सम्मुख आगमन करें ॥९॥

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे आवाहन का श्रवण करें । चाहे जहाँ आप स्थित हों, सुनें । हम यज्ञ में आपके निमित्त उत्तम अन्नों को भली प्रकार मिश्रित कर हविरूप प्रशंसित भोज्य-पदार्थ निवेदित करते हैं ॥१०॥

# सूक्त ७५

ऋषिः अवस्युरात्रेयः
देवता – आश्विनौ । छंद – पंक्ति

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके अत्यन्त प्रिय बलयुक्त, धनवाहक रथ को स्तोता ऋषि अपने स्तोत्रों से विभूषित करते हैं। हे मधुविद्या के ज्ञाताओ ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥१॥

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अन्यों को लाँघकर हमारे निकट आएँ । हम अपने शत्रुओं पर विजय पाने में सफल हों । शत्रुनाशक, स्वर्ण रथयुक्त, उत्तम धनसम्पन्न, नदियों की भाँति प्रवहमान, हे मधुविद्याविद् ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥२॥

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

स्वर्णरथी, शत्रु उत्पीड़क, रत्नधारक, धन-धान्ययुक्त, यज्ञप्रेमी हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ में आकर प्रतिष्ठित हों । हे मधु विद्याविशारद ! आप हमारे आवाहन को श्रवण करें ॥३॥

सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥

हे धनवर्षक अश्विनीकुमारो ! हम स्तोताजन आप दोनों की उत्तम स्तुति करते हैं। अपनी वाणी (मंत्रशक्ति) को आपके रथ में स्थापित किया हैं । आपका महान् अन्वेषक (साधक-याजक) आपके निमित्त हविष्यान्न तैयार करता हैं । हे मधुविद्याविद् देवो ! आप हमारे आवाहन को सुनें ॥४॥

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥

हे अश्विनीदेवो ! आप दोनों द्रुतगामी रथ पर आरूढ़ रहने वाले, बोधयुक्त मन वाले एवं स्तुतियाँ सुनने वाले हैं। आप निश्छल मन वाले च्यवन ऋषि के समीप अश्वों से पहुँचे थे । हे मधुविद्या के ज्ञातादेवो ! आप हमारे आवाहन को सुनें ॥५॥

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

हे नेतृत्वकर्ता अश्विनीकुमारो ! मन के संकेत मात्र से योजित होने वाले, बिन्दुदार चिह्नों वाले, वेगवान् अश्व आप दोनों को सोमपान के निमित्त सम्पूर्ण सुखों के साथ हमारी ओर लायें । हे मधुविद्याविशारद देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥६॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

हे अडिग, असत्यरहित अश्विनीकुमारों ! आप दोनों हमारे अभिमुख आगमन करें । हमारा निवेदन अस्वीकार न करें । हे सर्वदा विजयशील देवो ! आप दोनों अत्यन्त दूरस्थ प्रदेश से भी हमारे यज्ञगृह में आगमन करें । हे मधुविद्या के ज्ञाता देवो! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥७॥

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

हे शुभ कर्मों के पालक, अडिग, अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में आप दोनों, स्तुति करने वाले अवस्यु के समीप जाकर उन्हें आप दोनों विभूषित करें । हे मधुविद्याविद् देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥८॥

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥

हे धनवर्षक, शत्रुनाशक, अश्विनीकुमारो ! उषा प्रकाशित हुई है । ऋतु के अनुरूप तेजस्वी किरणों वाले अग्निदेव वेदी पर पूर्णतया संस्थापित हुए हैं । आपका अनश्वर रथ योजित किया गया है । हे मधु विद्याविद् देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥९॥

# सूक्त ७६

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – आश्विनौ । छंद – त्रिष्टुप

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

उषा के मुखरूप ये अग्निदेव दीप्तिमान् हो गये हैं (उषाकाल में अग्निहोत्र प्रारंभ हो गया हैं) तथा दिव्य स्तुतियाँ भी प्रारंभ हो गयी हैं। हे रथ में विराजित अश्विनीकुमारो ! हमें दर्शन देकर यज्ञ में पीने योग्य सोम के समीप उपस्थित होने की कृपा करें ॥१॥

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप संस्कारितों (प्राणियों, पदार्थों, क्रियाओं) को क्षति नहीं पहुँचाते हैं। इस यज्ञ में उपस्थित होने वाले, आपके निमित्त

स्तुति की जाती हैं । दिन के प्रारंभ होते ही हुव्य पदार्थ लेकर आते हुए विदाता (याजक) को आप सुख प्रदान करने वाले हैं ॥२॥

उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन में गाय दुहने (सायं गोधूलि वेला) के समय, प्रातः सूर्योदय के समय, मध्याह्न काले में, दिन के प्रखर रूप (अपराह्न काल) में अर्थात् सम्पूर्ण दिन-रात्रि में हमेशा सुखदायी, रक्षा करने के साधनों सहित पधारें । अभी सोमपान की क्रिया प्रारंभ नहीं हुई हैं। अतः आप शीघ्र पधारें ॥३॥

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए यह उत्तर वेदी आपका पुरातन निवास योग्य स्थान है। ये सम्पूर्ण गृह और आश्रय-स्थान भी आपके ही हैं। आप उदक पूर्ण मेघों द्वारा अन्तरिक्ष से हमारे निमित्त अन्न और बल वहन करके यहाँ आएँ ॥४॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

हम सब अश्विनीकुमारों के नूतन संरक्षण-सामथ्र्यो, सुखदायक अनुग्रहों और उत्तम नेतृत्व से संयुक्त हों । हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! हमारे निमित्त सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौभाग्य और वीर पुत्रों को प्रदान करें ॥५॥

# सूक्त ७७

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – आश्विनौ । छंद – त्रिष्टुप

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

हे ऋत्विजो ! प्रात: काल में सब देवों से पहले आने वाले अश्विनीकुमारों का आप पूजन करें। वे अदानशील और लोभी (राक्षसों) से पूर्व ही आकर सोमपान करते हैं। वे प्रातः यज्ञ को सम्यक् रूप से धारण करते हैं । पूर्वकालीन ऋषिगण उनकी प्रशंसा करते हैं ॥१॥

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

है ऋत्विजो ! अश्विनीकुमारों के लिए प्रातः काल यजन करें। उन्हें हव्यादि प्रदान करें । सायंकालीन प्रदत्त हव्य देवों को सेवनीय नहीं

होता। वह देवों के पास गमन करने वाला नहीं होता हुमसे अन्य जो कोई पूर्व में यजन करता है, वह सब देवों को तृप्त करता है । हमसे पहले जो यजन करने वाला होता है, वह देवों के लिए विशिष्ट प्रीतिकारक होता है ॥२॥

हिरण्यत्वङ्ङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों का स्वर्ण से आच्छादित, मनोहरवर्ण, जलवर्षक, अन्नधारक, मन के तुल्य वेगवान्, वायु के सदृश गमनशील रथ हमारी ओर आगमन करता है । आप उस रथ द्वारा सम्पूर्ण बाधाओं का अतिक्रमण करते हुए आगमन करें ॥३॥

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥४॥

ज़ों यजमान यज्ञ में हविर्विभाग करने के समय अश्विनीकुमारों को विपुल हव्यादि प्रदान करता है; वह अपने पुत्रों का शुभ कर्मों से पालन करता है । जो यज्ञादि कर्मों के निमित्त अग्नि उद्दीप्त नहीं करता; वह सर्बदा हिसित होता है ॥४॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।

आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

हम सब अश्विनीकुमारों के नूतन संरक्षण सामथ्र्यो, सुखदायक अनुग्रहों और उत्तम नेतृत्व से संयुक्त हों । हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! हमारे निमित्त आप सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौभाग्य और वीर पुत्रों को प्रदान करें ॥५॥

# सूक्त ७८

ऋषि: सप्तवाध्रिरात्रेय:
देवता – आश्विनौ । छंद – अनुष्टुप, १-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ में पधारें । जैसे दो धवल हंस जल की ओर जाते हैं, वैसे आप दोनों सोम के निकट आएँ ॥१॥

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! जैसे हरिण और गौर मृग तृणादि के प्रति दौड़ते हैं और हंस जैसे उदक के प्रति अवतीर्ण होते हैं, उसी प्रकार आप दोनों अभिषुत सोम के निकट अवतीर्ण हों ॥२॥

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।

हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३॥

हे सेना एवं धन रखने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे इष्ट सिद्धि के लिए यज्ञ को ग्रहण करें । जैसे हंस उदक के प्रति अवतीर्ण होते हैं, उसी प्रकार आप दोनों अभिषुत सोम के निकट अवतीर्ण हों ॥३॥

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शंतमेन ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! निवेदन करती हुई स्त्री के समान अत्रि ऋषि ने गहन तमिस्रा से व्याप्त लोक से मुक्ति के लिए आपका आवाहन किया था। तब आप अपने सुखकारों और नूतन रथ से श्येन पक्षी के सदृश वेगपूर्वक आये थे ॥४॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५॥

हे वनस्पतिदेव ! आप प्रसवोन्मुख योनि की भाँति विस्तृत (नव जीवन प्रदायक के रूप में प्रकट-विकसित) हों । हे अश्विनीकुमारो ! हमारा आवाहन सुनकर आप आएँ और मुझ सप्तवधि (इस नाम के व्यक्ति अथवा सात स्थानों से बँधे हुए प्राणी) को मुक्त करें ॥५॥

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! सप्तवधि ने भयभीत होकर मुक्ति के लिए निवेदन किया, तो आप दोनों ने अपनी माया (कुशलता) से वनस्पति को विदीर्ण कर दिया ॥६॥

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥

वायु जिस प्रकार सरोवर को स्पन्दित करता है, उसी प्रकार आपको गर्भ दस मास का होकर, स्पन्दन युक्त होकर प्रकट हो ॥७॥

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८॥

जैसे वायु, वन और समुद्र प्रकम्पित होते रहते हैं, उसी प्रकारे दस मास का गर्भस्थ जीव जरायु के साथ बाहर प्रकट हो ॥८॥

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

माता के गर्भ में दस मास पर्यन्त सोता हुआ बालक जीवित और क्षतिरहित अवस्था में जननी से सुखपूर्वक जन्म ग्रहण करे ॥९॥

# सूक्त ७९

ऋषि: सत्यश्रवा आत्रेय:
देवता – उषा । छंद – पंक्ति

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

हे सुप्रकाशित उषादेवि ! पूर्व की भाँति हमें ज्ञान युक्त बनायें, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए बोध दें । हे श्रेष्ठ कुल वाली, सत्य भाषिणी, वय्य के पुत्र सत्यश्रवा (सच्ची कीर्ति वाले) को अपनी कृपा का पात्र बनायें ॥१॥

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

हे द्युलोक की पुत्री उषादेवि ! आप शुचद्रथ के पुत्र सुनीथ के लिए अन्धकार को दूर करके प्रकाशित (प्रकट) हुईं। ऐसी आप, वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह (प्रकाश) वृष्टि करें ॥२॥

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

हे आदित्य पुत्री उषादेवि ! आप हमें प्रचुर धन दें और आज हमारे अन्धकार को मिटायें । हे बलयुक्त , तमनाशक, प्रसिद्ध, सत्यरूपिणि उषादेवि ! वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर कृपा करें ॥३॥

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

हे प्रकाशवती उषादेवि ! ये (स्तोतागण) दीप्तिमान् उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । वे ऐश्वर्य द्वारा उत्तम शोभावान् और उत्तम दानशील हैं । हे धनवती, जन्म से शोभावती उषादेवि ! स्तोतागण अश्व प्राप्ति के लिए आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥४॥

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥

हे उषादेवि ! जो स्तोतागण धन-प्राप्ति के लिए आपका स्तवन करते हैं, वे निश्चय ही ऐश्वर्य धारण करते हैं। और अक्षय व्यादि रूप धन देते रहते हैं । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्वप्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥५॥

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

हे धनवती उषादेवि ! इन स्तोताओं को उत्तमवीर पुत्रों से युक्त अन्न प्रदान करें, जिससे वे धन-सम्पन्न होकर हमें विपुल धन दें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते है ॥६॥

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७॥

हे धनवती उषादेवि ! जो यजमान-स्तोता हमें गौओं, अश्वों से युक्त धन प्रदान करते हैं, उनके लिए आप तेजस्वी धन और प्रभूत अन्न प्रदान करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥७॥

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८॥

हे सूर्य पुत्री उषादेवि ! सूर्य एवं अग्नि की शुभ, प्रदीप्त रश्मियों के साथ हमारी ओर आगमन करें । हमें गौओं से युक्त अन्न प्रदान करें। हे

जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥८॥

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९॥

हे सूर्य पुत्री प्रकाशवती उषादेवि ! हमारे कर्म के लिए विलम्ब न करें। जैसे राजा अपने शत्रु और चोर को सन्तप्त करते हैं, वैसे सूर्यदेव अपने तेज से आपको सन्तप्त न करें। हे जन्म से शोभावती उषादेवि! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥९॥

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

हे उषादेवि ! आप अभिलषित धन और अतिरिक्त धन भी प्रदान करने में समर्थ हैं । आप स्तोताओं का तम (अन्तर्तम) विनष्ट करने वाली हैं और उनका सन्ताप दूर करने वाली हैं। हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥१०॥

# सूक्त ८०

ऋषि: सत्यश्रवा आत्रेय:
देवता – उषा: । छंद – त्रिष्टुप

दयुतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥

दीप्तिमान् रथ पर आरोहित रहने वाली, सर्वव्यापिनी, यज्ञ द्वारा पूजनीय, अरुणिम वर्णयुक्त, दीप्तिमती तथा सूर्यदेव के आगे चलने वाली उषा देवी के प्रति ज्ञानीजन विचारपूर्वक श्रेष्ठ स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥१॥

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२॥

ये दर्शनीय उषादेवी प्रसुप्तजनों को चैतन्य करती हैं और मार्गों को सुगम बनाती हुई अत्यन्त व्यापक रथों पर आरूढ़ होकर सूर्यदेव के

आगे-आगे गमन करती हैं। महती और विश्वव्यापिनी उषादेवी दिन के आरम्भ में प्रकाश विस्तीर्ण करती हैं ॥२॥

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥

ये उषादेवीं अरुणाभ वृषभों (किरणों) को नियोजित करने वाली हैं और अक्षय धनों को स्थिर रखती हैं। ये अत्यन्त दीप्तिमती, बहुतों द्वारा स्तुत और सबके द्वारा वरण करने योग्य हैं, जो मार्गों को प्रकाशित करती हुई स्वयं प्रकाशमती हैं ॥३॥

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

ये उषादेवी रात्रि और दिवस दोनों कालों में ऊर्ध्व और निम्न द्युलोक में गमन करती हुई पूर्व दिशा में प्रकट होती हैं ।ये सूर्यदेव के मार्ग का अनुवर्तन करती हैं ।ज्ञानवती स्त्री के सदृश ये दिशाओं का विस्मरण नहीं करतीं ॥४॥

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

स्नान करके ऊपर (जल से बाहर निकलती हुई शुभवर्णा स्त्री की भाँति ये उषादेवी अपने शरीर को प्रकाशित करती हुई हमारे सम्मुख पूर्व से उदित होती हैं । ये सूर्यपुत्री उषादेवी द्वेषरूपी तमिस्रा को विदीर्ण करती हुई प्रकाश के साथ आगमन करती हैं ॥५॥

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥

पश्चिम की ओर गमन करतो ये सूर्य पुत्री उषादेवी कल्याणकारी रूप वाली स्त्री की भॉति अपने रूपों को प्रकट करती हैं। सर्वदा तरुणीं ये उषादेवी अपने ज्यातिरूप को पूर्व की भाँति प्रकाशित करती हैं। ये हविदाता यजमान को वरणीय धन प्रदान करती हैं ॥६॥

# सूक्त ८१

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – सविता । छंद – जगती

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

अकेले ही यज्ञ को धारण करने वाले, सभी मार्गों के ज्ञाता सवितादेव महान् स्तुतियों के पात्र हैं। महान् बुद्धिमान् एवं ज्ञानी जन अपने मन एवं बुद्धि को उन प्रेरक सविता के साथ नियोजित करते हैं ॥१॥

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२॥

वे अत्यन्त मेधावी सवितादेव अपने सम्पूर्ण रूपों को प्रकट करते हैं। वे मनुष्यों और पशुओं के लिए कल्याणकारी हैं। वे सबके द्वारा वरणीय सवितादेव द्युलोक को प्रकाशित करते हैं । उषादेवी के प्रयाण के अनन्तर वे प्रकाशित होते हैं ॥२॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥३॥

अग्नि आदि सम्पूर्ण देवगण, जिन सवितादेव के महिमायुक्त मार्गों का अनुगमन करके ओज (बल) को धारण करते हैं, जिन सवितादेव ने अपनी महत्ता से पृथ्वी आदि लोकों को परिव्याप्त किया, वे देव अत्यन्त शोभायमान हैं ॥३॥

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

हे सवितादेव ! आप तीनों प्रकाशित लोकों में गमन करते हैं और सूर्य रश्मियों से संयुक्त होते हैं। आप रात्रि के दोनों छोरों को प्रभावित करके परिगमन करते हैं । हे देव ! आप कल्याणकारी कर्मों से संसार के मित्र रूप होते हैं ॥४॥

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५॥

हे सवितादेव ! आप अकेले ही सम्पूर्ण उत्पन्न जगत् के अधीश्वर हैं। आप अपनी गमन-सामर्थ्य से जगत् के पोषक रूप हैं। आप सम्पूर्ण

लोकों में विशिष्टरूप से देदीप्यमान हैं । तेजस्वी अश्वों-पराक्रमों से युक्त श्यावाश्व ऋषि आपके निमित्त स्तोत्रों को निवेदित करते हैं ॥५॥

# सूक्त ८२

ऋषि: श्यावाश्व आत्रेय:
देवता – सविता । छंद – गायत्री, १ अनुष्टुप

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥

हम सवितादेव के उस प्रसिद्ध और उपभोग योग्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं तथा उन भगदेव के श्रेष्ठ सर्वधारक, शत्रुविनाशक ऐश्वर्य को भी धारण करें ॥१॥

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२॥

अपने यश को विस्तृत करने वाले इन सवितादेव के अत्यन्त प्रिय और प्रकाशित ऐश्वर्य को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥२॥

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः ।

तं भागं चित्रमीमहे ॥३॥

वे सविता और भगदेव हविदाता यजमान को उत्तम वरणीय रत्नादि प्रदान करते हैं । हम भी उन देवों से उस विलक्षण ऐश्वर्य के भाग की याचना करते हैं ॥३॥

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुष्ष्वप्न्यं सुव ॥४॥

हे सवितादेव ! आप आज हमें पुत्र-पौत्रों सहित पवित्र ऐश्वर्य प्रदान करें । दुःखदायी स्वप्नों की तरह दरिद्रता को हमसे दूर करें ॥४॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥५॥

हे सवितादेव ! आप हमारे सम्पूर्ण दुःखों (पाप मूलक दुर्गुणों) को दूर करें और जो हमारे निमित्त कल्याणकारी हो, उसे हमारे अभिमुख प्रेरित करें ॥५॥

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे ।
विश्वा वामानि धीमहि ॥६॥

हम सवितादेव की आज्ञा में रहकर माता अदिति (अखण्डु-भूमि) के लिए निरपराधी हों। हम सम्पूर्ण वाञ्छित धनों को धारण करें ॥६॥

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम् ॥७॥

आज सबके देवस्वरूप, सत्यव्रतियों के पालक, सत्यव्रतों के रक्षक सवितादेव को यज्ञ मेंसूक्तों के माध्यम से बुलाते हैं ॥७॥

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीर्देवः सविता ॥८॥

जो सवितादेव उत्तम कर्म करते हुए दिन और रात्रि के सन्धि भाग में गमन करते हैं, हम उत्तम स्तोत्रों से उनका वरण करते हैं ॥८॥

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥९॥

जो सवितादेव इन सम्पूर्ण प्राणियों को उत्तम कर्मों में प्रेरित करते हैं और उन्हें अपना यश सुनाते हैं (हम उन्हें आवाहित करते हैं) ॥९॥

# सूक्त ८३

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – पर्जन्य:, । छंद – त्रिष्टुप, २-४ जगती, ९ अनुष्टुप
सूक्त ८३

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥

हे यजमानो ! उन बलसम्पन्न पर्जन्यदेव के सम्मुख उनकी स्तुति करें । हव्यादिऔर उत्तम वाणियों द्वारा उनका स्तवन करें ये देव जलवर्षक, दानशील एवं गर्जनकारी हैं, जो ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करते हैं ॥१॥

वि वृक्षान्हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

ये पर्जन्यदेव (अनुपयुक्त) वृक्षों का विनाश करते हैं। राक्षसों को हनन करते हैं । अपने भयंकर आघातों से सम्पूर्ण लोकों को भयाक्रान्त कर

देते हैं । गर्जना करते हुए ये पापियों को विनष्ट करते हैं और जल वृष्टि करके निरपराधियों की रक्षा करते हैं ॥२॥

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥३॥

जिस प्रकार रथी अपने घोड़ों को चाबुक से उत्तेजित करता है, उसी प्रकार पर्जन्य, गर्जनकारी, शब्दों से मेघों को प्रेरित करते हैं ।जब मेघ जलराशिसे पूर्ण होते हैं, तब सिंह के सदृश गर्जना करते हैं, जो दूर तक सुनाई देता है ॥३॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

जब पर्जन्यदेव जलराशि से युक्त होकर पृथ्वी की ओर अवतीर्ण होते हैं, तब वायु विशेष प्रवाहयुक्त होती है, विद्युत् चमकती है और ओषधिरूप वनस्पतियाँ वृद्धि पाती हैं, आकाश स्रवित होता है तथा यह पृथ्वी सम्पूर्ण जगत् के हितार्थ पुष्ट होती है ॥४॥

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

हे पर्जन्यदेव !आपके कर्मों के कारण पृथ्वी उत्पादनशील होती है तथा सभी प्राणी पोषण प्राप्त करते हैं ।आपके कर्मों से ओषधिरूप वनस्पतियाँ नाना रूप धारण करती हैं । हे देव ! आप हमें महान् सुख प्रदान करें ॥५॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥

हे मरुद्गणो ! आप हमारे निमित्त वृष्टि करें । वर्षणशील मेघ की जलधाराएँ हमें पोषण प्रदान करें। हे पर्जन्यदेव ! आप गर्जनशील मेघों के साथ जल का सिंचन करते हुए हमारी ओर आगमन करें। आप प्राणवर्षक रूप में हमारे पिता स्वरूप पोषणकर्ता हैं ॥६॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट की गर्जना से युक्त होकर ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करें । उदक धारक रथ से गमन करें । उदकपूर्ण (जलपूर्ण ) मेघों के मुख को नीचे करें और इसे खाली करें, ताकि उच्च और निम्न प्रदेश समतल हो सकें ॥७॥

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।

घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

हे पर्जन्यदेव ! अपने जलरूपी महान् कोश को विमुक्त करें और उसे नीचे बहायें, जिससे ये जल से परिपूर्ण नदियाँ अबाधित होकर पूर्व की ओर प्रवाहित हों । आप जल-राशि से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करें; ताकि हमारी गौओं को उत्तम पेय जल प्राप्त हो ॥८॥

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन्हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट युक्त गर्जना करते हुए जब आप पापियों (मेघ) को विदीर्ण करते हैं, तब सम्पूर्ण जगत् और इसमें अधिष्ठित प्राणी अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं ॥९॥

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१०॥

हे पर्जन्यदेव ! आपने बहुत वृष्टि की है। अभी वृष्टि को थाम लें । आपने मरुभूमि को भी जल से पूर्ण कर दिया है। आपने सुखकर उपभोग के लिए ओषधिरूप वनस्पतियाँ उत्पन्न की हैं। आपने प्रजाओं द्वारा उत्तम स्तुतियाँ भी प्राप्त की हैं ॥१०॥

# सूक्त ८४

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – पृथ्वी, । छंद – अनुष्टुप

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१॥

हे प्रकृष्ट गुणवती और महिमावती पृथिवीदेवि ! आप भूमिचर प्राणियों को अपनी सामर्थ्य से पुष्ट करती हैं। और साथ ही अत्यन्त विस्तृत पर्वत-समूहों को भी धारण करती हैं ॥१॥

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२॥

हे विविध-विध विचरणशीला और शुभ वर्ण वाली पृथिवीदेवि ! आप जब अश्वों के समान भयंकर शब्द करने वाले मेघों को वर्षण के निमित्त प्रेरित करती हैं, तब स्तोतागण आपके प्रति उत्तम स्तोत्रों से स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥२॥

दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३॥

हे पृथिवी माता ! जब अन्तरिक्ष में स्थित मेघों से विद्युत् द्वारा वृष्टि होती हैं, तब आप अपनी दृढ़-सामर्थ्य से वनस्पतियों को धारण करती हैं ॥३॥

# सूक्त ८५

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – वरुण । छंद – त्रिष्टुप

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥१॥

हे अत्रि वंशजो ! आप विशिष्ट प्रकाशमान, प्रसिद्ध वरुणदेव के लिए अत्यन्त विस्तृत, गंभीर और प्रीतिकर स्तुतियों करें । जैसे व्याध-पशुओं के चर्म को विस्तृत करता है, उसी तरह इन देव ने सूर्यदेव के परिभ्रमण के लिए आकाश को विस्तृत किया हैं ॥१॥

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥२॥

वरुणदेव ने वन में वृक्षों के ऊपरी भाग पर (मूर्त पदार्थों के अभाव में) अन्तरिक्ष को विस्तृत किया। अश्वों या मनुष्यों में वीर्य-पराक्रम की वृद्धि की । गौओं में दुग्ध को प्रतिष्ठित किया । हृदय में संकल्पशक्ति

युक्त मन को, प्राणियों में (पाचन के लिए) जठराग्नि को, द्युलोक में सूर्यदेव को तथा पर्वत पर सोम (आदि ओषधियों) को उत्पन्न किया ॥२॥

नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३॥

वरुणदेव ने द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों के हितार्थ मेघों के मुख को नीचे करके विमुक्त किया । जैसे वृष्टि से यवादि अन्न पुष्ट होते हैं, वैसे उन देव ने वृष्टि से भूमि को उर्वर बनाया है ॥३॥

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४॥

वरुणदेव जब वृष्टिरूप जल की इच्छा करते हैं; तब वे पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में जल-सिंचन कर देते हैं, अनन्तर पर्वत शिखर मेघों से आच्छादित होते हैं और मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से उत्साहित होकर मेघों को शिथिल करते हैं ॥४॥

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥

जिन वरुणदेव ने मान-दण्ड के समान सूर्यदेव के द्वारा अन्तरिक्ष-पृथिवी को प्रभावित किया, उन प्राण-प्रदाता और प्रसिद्ध वरुणदेव की इस महती क्षमता की हम प्रशंसा करते हैं ॥५॥

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६॥

जिस प्रकार जल-सिंचन करने वाली प्रवहमान नदियाँ अपने जल से एक समुद्र को भी पूर्ण नहीं कर पाती, उसी प्रकार उन ज्ञान-सम्पन्न वरुणदेव की इस महती क्षमता का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता है ॥६॥

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥

हे सर्वदा वरणीय वरुणदेव ! यदि हमने कभी अपने दातापुरुष, मित्र, सखा, भ्राता, सर्वदा समीपस्थ पड़ोसी अथवा मूक के प्रति कोई अपराध किया हो, तो उस अपराध से हमें विमुक्त करें ॥७॥

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८॥

हे वरुणदेव ! द्यूतक्रीड़ा में (जुआ खेलने में) यदि हमने कोई प्रवंचना की हो अथवा जानकर या अज्ञानतावश अपराध किया हो, तो हे वरुणदेव ! बन्धनों को शिथिल करने के समान हमें उन सम्पूर्ण अपराधों से विमुक्त करें; ताकि हम आपके प्रिय-पात्र हों ॥८॥

## सूक्त ८६

ऋषि: भौमोऽत्रि:
देवता – इंद्राग्नि । छंद – अनुष्टुप, ६ विराटपूर्वा

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृव्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१॥

हे इन्द्राग्नि देवो ! आप दोनों युद्धों में जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, वह मनुष्य वेदों की तीनों वाणियों का मर्म समझ लेता है और सुदृढ़ तथा दीप्तिमान् होकर शत्रु सेना को छिन्न-विच्छिन्न कर देता हैं ॥१॥

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२॥

जो युद्धों में अपराजेय हैं, जो यज्ञों में अत्यन्त पूज्य हैं, जो पंचजनों द्वारा स्तुत्य हैं, उन इन्द्राग्नि देवों का हम आवाहन करते हैं ॥२॥

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।

प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३॥

इन इन्द्राग्नि देवों का बल शत्रु संहारक है। ये देवगण स्तुतियों को प्राप्त करने, शत्रुओं का संहार करने के निमित्त द्रुतगति से रथ में गमन करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्राग्नि, अपने दोनों हाथों में तीक्ष्ण वज्र धारण करते हैं ॥३॥

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४॥

वेगवान् धनों के अधिपति, सर्वज्ञाती, अतिशय पूजनीय हे इन्द्राग्नि देवो ! हम युद्ध में रथों को प्रेरित करने के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४॥

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥५॥

मनुष्यों के लिए प्रवर्धत हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों अहिंसनीय हैं। हम अश्वों की प्राप्ति के लिए आप दोनों को स्तुति करते हैं और सोमरस की भाँति आगे स्थापित करते हैं ॥५॥

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६॥

हमने बलकारक, घृत के समान तेजस्वी, पाषाण द्वारा कूटकर निष्पन्न सोम से युक्त हव को इन्द्र और अग्निदेवों के लिए निवेदित किया हैं । वे देवगण हम स्तोताओं को प्रभूत धन युक्त समृद्धि और विपुल अन्न प्रदान करें ॥६॥

# सूक्त ८७

ऋषि: एवयामरूदात्रेय:
देवता – मरुत: । छंद – अतिजगती

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१॥

'एवया' नामक ऋषि द्वारा की गई स्तुतियाँ महान् इन्द्रदेव आपको तथा मरुत् सहित विष्णुदेव को प्राप्त हों । उत्तम आभूषणों से अलंकृत, कल्याणकारी याज्ञिक को उन्नतिशील मरुतों का बल प्राप्त हो ॥१॥

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः
॥२॥

जो मरुद्गण अपनी महत्ता से प्रकट हुए और अपनी विद्या से विख्यात हुए, उन मरुद्गणों का वर्णन एवया मरुत् ऋषि करते हैं । हे मरुतो !

आपका बल अनेक विशिष्ट कर्तृत्वों, दान आदि से युक्त होने के कारण महान् हैं । आप शत्रु द्वारा अपराभूत तथा पर्वत के सदृश अटल हैं ॥२॥

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्यन्द्रासो धुनीनाम् ॥३॥

अत्यन्त दीप्तिमान् और प्रभावान् ये मरुद्गण विस्तृत आकाश से गमन करते हुए भी प्रजाओं के आमन्त्रण को सुनें । एवयामरुत् ऋषि उन मरुतों का वर्णन अपनी वाणियों से करते हैं। इन्हें कोई अपने स्थान से विचलित नहीं कर सकता। वे अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशमान हैं और घोर शब्दवान् भयंकर शत्रुओं को भी स्पन्दित कर डालते हैं ॥३॥

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥४॥

इन मरुद्गणों के स्वेच्छा से विचरणशील अश्व, जब इनके निवास के समीप रथ में नियोजित होते हैं, तब एवयामरुत् उनसे अपेक्षा रखते हैं। वे मरुत् अपने महान् संघ के साथ परस्पर स्पर्धारहित भाव से

अपने समान निवास स्थान से बाहर आते हैं। वे विलक्षण तेजों से युक्त और सुखवर्द्धक हैं ॥४॥

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५॥

हे मरुद्गणो ! आपका वह बल-सम्पन्न जलवर्षक, तेजस्वी, ममनशील, प्रभावकारी शब्द एवयामरुत् ऋषि को भयभीत न करे, जिस शब्द से आप शत्रुओं को पराभूत कर, वश में कर लेते हैं । हे मरुतो ! आप स्वयं दीप्तिमान्, स्थिर रश्मियों वाले, स्वर्णमय अलंकृत, उत्तम आयुधों से सज्जित और अन्न प्रदाता हैं ॥५॥

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥६॥

हे प्रवर्द्धमान शक्तिशाली मरुतो ! आपकी महिमा निश्चय ही अपार है। आपका तेजस्वी बल एवयामरुत् ऋषि की रक्षा करे । शत्रुओं के आक्रमणों में आप स्थिर स्थान में अविचलित हुए दीखते हैं। आप अग्निदेव के सदृश तेजस्वी हैं । हमें अपने निंदकों से रक्षित करें ॥६॥

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम्
॥७॥

हे उत्तम पूजनीय, अग्निवत् अतिशय दीप्तिमान् , रुद्रपुत्र मरुद्गणो ! आप एवयामरुत् ऋषि को संरक्षित करें। आप अपने अत्यन्त दीर्घ और विस्तीर्ण निवास स्थान के कारण विख्यात हुए हैं । आप पापरहित हैं । गमन करते हुए महान् तेजों के साथ प्रकाशित होते हैं ॥७॥

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः
॥८॥

हे द्वेषरहित मरुद्गणो ! आपके निमित्त काव्य स्तोत्रों के गान के समय आप यहाँ आगमन करें । स्तुतिकर्ता एवयामरुत् अंघ के स्तोत्रों का श्रवण करें । हे उत्कंठित मन वाले मरुतो ! आप रथ से योजित होने वाले अश्वों के समान व्यापक विष्णुदेव की शक्तियों से प्रयोजित होकर हमारे स्तोत्रों से प्रशंसित हों । हे मरुतो ! अपने पराक्रमों से हमारे गुप्त शत्रुओं को दूर हटायें ॥८॥

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।

ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९॥

हे यजनीय मरुद्गणो ! हमारे यज्ञ की सिद्धि हेतु यज्ञ में आगमन करें। अरक्षित एवयामरुत् ऋषि की प्रार्थना सुनकर उन्हें संरक्षित करें । हमारे रक्षण कार्य में आप पर्वत की भाँति अडिग और महान् हैं । हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न मरुतो ! आप हमारे निन्दकों के मध्य अजेय होकर उनके शासक बने ॥९॥

**॥इति पंचम मण्डलं ॥**